धर्म

प्रथम अध्याय

हेतु-प्रत्यय

1
चार आर्यसत्य

1. यह संसार दु:खमय है। जन्म दु:ख है, जरा दु:ख है, व्याधि और मृत्यु सब दु:ख है। अप्रिय व्यक्ति से संयोग दु:ख है, प्रिय व्यक्ति से वियोग दु:ख है, तथा इच्छाओं का पूरा न होना भी दु:ख है। वास्तव में जो जीवन आसक्ति से मुक्त वह दु:खमय है। वह दु:ख पहला आर्यसत्य है।

मनुष्य-जीवन के इस दु:ख का उद्‌भव कैसे होता है यह सोचें तो वह नि:संशय मनुष्य-हृदय में बसी हुई तृष्णा के कारण होता है। और इस तृष्णा का मूल मानव शरीर की जन्मजात प्रबल वासनाओं में है। जीवित रहने की प्रबल आकांक्षा पर आधारित वासनाएँ कामनाओं की ओर इतनी तीव्रता से आकर्षित होती रहती हैं कि कभी-कभी कामनाएँ मृत्यु तक का कारण बन जाती हैं। यह दु:ख का हेतु आर्यसत्य है।

इस तृष्णा को मूल से उखाड़कर, सभी आसस्तियों से युक्ति पाने पर

मनुष्य के दु:ख का निरोध होता है! यह दु:ख निरोध आर्य्यसत्य है।

इस दु:ख के संपूर्ण निरोध की अवस्था को प्राप्त करने के लिए आर्य अष्टांगिक मार्ग का आचरण करना चाहिए। यह आर्यअष्टांगिक मार्ग है–सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्म, सम्यक् जीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति सम्यक् समाधि। यह अष्टांगिक मार्ग दु:खनिरोधगामिनी प्रतिपदा है।

यह संसार दु:ख से भरा हुआ है, इसलिए ये चार आर्यसत्य मनुष्यों को अच्छी तरह आत्मसात करने चाहिए। जो भी इस दु:ख से मुक्ति चाहता है उसे तृष्णा का संपूर्ण क्षय करना होगा। तृष्णा और दु:ख से मुक्ति निर्वाण द्वारा ही प्राप्त होता है और निर्वाण इस आर्यअष्टांगिक मार्ग से ही प्राप्त होता है।

2. मार्ग का आचरण करने की आकांक्षा रखनेवाले मनुष्य को भी इन चार आर्यसत्यों का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए। इनका ज्ञान न होने के कारण दीर्घकाल तक भ्रांति के जंगल में भटकते रहना होगा। जो इस चार आर्यसत्यों का ज्ञान रखते हैं, उन्हें निर्वाण-चक्षु प्राप्त कहा जाता है।

इसलिए चित्त को एकाग्रकर बुद्ध के उपदेश को ग्रहणकर, इन चार

आर्यसत्यों के सिद्धान्त को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। किसी भी युग का संत, यदि वह सच्चा संत हो, तो उसने इन चार आर्यसत्यों का साक्षात्कार किया होगा तथा वह इन चार आर्यसत्यों का उपदेश करता होगा।

जब मनुष्य इन चार आर्यसत्यों को पूर्णतः आत्मसात् कर लेता है तभी वह लोभ से मुक्त होता है; तब वह दुनिया से लड़ाई-झगड़ा नहीं करता, हिंसा नहीं करता, चोरी नहीं करता, व्यभिचार नहीं करता, छल-कपट नहीं करता, निन्दा नहीं करता, चापलूसी नहीं करता, ईर्ष्या नहीं करता, क्रोध नहीं करता, जीवन की अनित्यता को नहीं भूलता, कभी भी सन्मार्ग से विचलित नहीं होता।

3. सन्मार्ग का आचरण करने का अर्थ ह, मानो दीपक लेकर अंधेरे कमरे में प्रवेश करना : अंधः कार तुरन्त हट जाएगा और कमरा प्रकाश से भर जाएगा।

जिन्होंने चार आर्यसत्य के अभिप्राय को समझ लिया है और सन्मार्ग का अनुसरण करना सीख लिया है वे अज्ञानान्धकार को मिटाने वाले ज्ञान के प्रकाश से संपन्न हो जाते हैं।

बुद्ध केवल इन चार आर्यसत्यों का दिग्दर्शन कराकर हीं प्राणियों का मार्गदर्शन करते हैं। जो इनको अच्छी तरह आत्मसात् करते हैं, वे इन चार आर्यसत्यों द्वारा, इस क्षणभंगुर संसार में सम्यक्संबोधि प्राप्त कर संसार के प्राणियों के रक्षक बनते हैं, आश्रय बनते हैं। ऐसा इसलिए होता है कि इन

चार आर्यसत्यों का स्पष्ट ज्ञान हो जाने पर तृष्णा की मूल अविद्या का नाश हो जाता है।

बुद्ध के शिष्य इन चार आर्यसत्यों द्वारा उपदेशों को ग्रहण कर, सभी सिद्धान्तों को समझने के लिए, आवश्यक प्रज्ञा और पुण्य प्राप्तकर, किसी भी मनुष्य के सामने खड़े होकर स्वेच्छा से धर्म का उपदेश करने में समर्थ होते हैं।

2
अद्‌भुत कर्मसंबंध

1. जैसे प्राणियों के दु:ख का कारण है, तथा उन दु:खों के विमोक्ष के लिए साधना कारण बनती है, वैसे ही सभी वस्तुएँ हेतु (परिस्थिति) के होने से उत्पन्न होती है, हेतु के नष्ट होने से नष्ट होती है।

वर्षा का होना, हवा का चलना, फूलों का खिलना, पत्तों का झड़ना सभी हेतु-निर्भर है और हेतु के अभाव से समाप्त हो जाता है।

यह शरीर भी माता-पिता के हेतु से पैदा होकर, अन्न से परिपुष्ट होता है; तथा यह चित्त भो अनुभव और ज्ञान के कारण सुसंस्कृत हुआ है।

अत:, यह शरीर और चित्त दोनों ही हेतु-निर्भर हैं और हेतु परिवर्तन

से परिवर्तित होते रहते हैं।

जाल अनेक ग्रंथियों से बना होता है। ये ग्रंथियाँ परस्पर जुड़कर जाल बनाती हैं वैसे ही इस संसार की सभी वस्तुएँ परस्पर जुड़ी हुई हैं।

जाल की केवल एक ग्रंथि को जाल मानना या जाल से स्वतंत्र मानना बहुत बड़ा भ्रम है।

जाल इसलिए जाल है कि वह कई ग्रंथियों के आपस में जुड़े होने से बना है और जाल की हर ग्रंथि एक दूसरे से संबद्ध और गुंफित है।

2. आवश्यक परिस्थितियाँ (हेतु) जुट जाने से फूल खिलाता है, आवश्यक परिस्थितियाँ जुट जाने से पत्ता झड़ जाता है। न फूल निर्हेतु खिलता है न पत्ता निर्हेतु झड़ता है।

क्योंकि खिलना भी सहेतुक और झड़ना भी सहेतुक है, सभी वस्तुएँ परिवर्तनशील हैं। किसी भी वस्तु के अकेला अस्तित्व नहीं होता, न कोई वस्तु नित्य स्थिर रहती है।

सभी वस्तुओं की उत्पत्ति हेतुजन्य और उनका विनाश भी हेतुजन्य है: यह शाश्वत नियम है, कभी नहीं बदलता इसलिए परिवर्तनशीलता, नित्य स्थिरता का न रहना यह इस विश्व का ऐसा नियम है जिसे कभी बदला नहीं जा सकता; केवल यही अनंत काल तक अपरिवर्तनशील है।

3
प्रतीत्य समुत्पाद

1. तो फिर, लोगों के 'शोक, व्यथा, दु:ख और वेदना का उद्‌भव कैसे

होता है? ये सब आसक्ति के कारण पैदा होते हैं।

लोग संपत्ति के प्रति आसक्त होते हैं, यश और कीर्ति के प्रति आसक्य होते हैं, सुखोपभोगो के प्रति आसक्त होते हैं, अपने आप के प्रति आसक्त होते हैं। इस आसक्ति के कारण दु:ख और क्लेश पैदा होते हैं।

जरा व्याधि एवं मृत्यु की अपरिहार्यता के अतिरिक्त भी यह संसार आदिकाल से अनेक विपत्तियों से भरा हुआ है। इस कारण दु:ख और क्लेश बढ़ जाते हैं।

दु:ख, क्लेश और सभी विपत्तियों का मूल कारण आसक्ति है; आसक्ति से मुक्ति पाने पर सभी दु:ख और क्लेश समूल नष्ट हो जाते हैं।

लोभ और लालसा का मूल कारण मानव-हृदय स्थित अविद्या और झूठी आकांक्षाएँ हैं।

अविद्या का अर्थ है वस्तुओं की सतत परिवर्तनशीलता को न देख पाना: हेतुफल के शाश्वत नियम के प्रति अज्ञान अविद्या है। जो वस्तुएँ प्राप्त होना संभव नहीं, उनके प्रति लालसा रखना, आसक्ति रखना लोभ है।

मूलत: वस्तुओं में कोई भेद नहीं होता, अविद्या और लोभ के प्रभाव

के कारण उनमें भेद दिखाई देता है। मूलत: वस्तुएँ अपने-आपमें अच्छी या बुरी नहीं होतीं, अविद्या और लोभ के कारण उनमें अच्छाई या बुराई दिखाई देती है।

सभी लोग, सदा बुरे विचारों से फँसकर, मूढ़ता के कारण सम्यक् दृष्टि खो बैठते हैं; और अहंकार से लिप्त होकर गलत व्यवहार कर बैठते हैं, जिसके फलस्वरूप सतत भ्रांति में फँसे रहते हैं।

लोग कर्म के खेत में चित्तविक्षेप का बीज बोकर, अविद्या की मिट्टी से उसे ढँककर, कामलोलुपता की वर्षा से उसे भिगोकर, अहंकार के पानी से सींचकर असत् विचारों की फसल कमाते हैं और भ्रांति के इस बोझ को ढोये चले जाते हैं।

2. वास्तव में लोगों का चित्त ही शोक, व्यथा, दु:ख और क्लेशों से भरे इस भ्रांतिमय संसार को पैदा करता है।

यह भ्रांतिमय संसार इस चित्त से प्रकट हुई चित्त की छाया-मात्र है, और विमोक्ष का संसार भी इसी चित्त से पैदा होता है।

3. इस संसार में तीन मिथ्या दृष्टियाँ हैं।

यदि इन दृष्टियों को अपना था जाए, तो इस संसार की सभी बातों को अस्वीकार करना पड़ेगा।

पहली दृष्टि से अनुसार सभी मानवी क्रियाकलाप दैवाधीन होते हैं। द्सरी के अनुसार सब का कर्ता और नियामक ईश्वर है। तीसरी के अनुसार सब कुछ बिना किसी हेतु या प्रत्यय के अचानक होता है।

यदि सब कुछ दैवाधीन है तो इस संसार में सभी सत्कर्म या दुष्कर्म दैव-निर्धारित हैं, सुख और दु:ख दोनों ही दैवाधीन होकर, दैव के अतिरिक्त और किसी का अस्तित्व नहीं है।

तब तो मनुष्यों के लिए करणीय, अकरणीय कुछ भी नहीं रह जाता; मनुष्य और इस संसार के सुधार एवं उन्नयन की सारी संभावनाएँ समाप्त हो जाती है।

यही बात ईश्वर को सब का कर्ता और नियामक तथा सब घटनाओं को निर्हेतुक-निर्प्रत्यय मानने वाली मिथ्या दृष्टियों पर भी लागू होती है। इनको माननेवाले लोग निराशान्धकार में भटकते हुए सत्कर्मों को करने और आत्मिक विकास के सभी प्रयत्नों को छोड़ बैठते हैं।

वास्तव में ये तीनों मिथ्या दृष्टियाँ हैं। सभी की उत्पत्ति और विनाश भी हेतुजन्य है।

द्वितीय अध्याय

मनुष्य का मन एवं वस्तुओं का यथार्थ रूप

1
अनित्यता एवं अनात्मकता

1. यद्यपि शरीर तथा मन दोनों ही हेतुजन्य हैं, पर इससे आत्मा का अस्तित्व सिद्ध नहीं होता। पंचमहाभूतों को विग्रह होने के कारण यह शरीर अनित्य और नाशवान है।

यदि इस शरीर में आत्मा होती, तो वह अपनी इच्छा के अनुसार जो चाहे कर सकता है।

राजा अपने राज्य में, दण्डनीय लोगों को दण्ड देता है, पुरस्कार के योग्य लोगों को पुरस्कार देता है, अपनी इच्छा के अनुसार सब कुछ कर सकता है। लेकिन इतनी सामर्थ्य के रहते और इच्छा न होते हुए भी वह व्याधिग्रस्त होता है, न चाहने पर भी वृद्ध हो जाता है; शरीर के संबंध में एक भी बात उसकी इच्छा के अनुसार नहीं होता।

उसी प्रकार मन भी आत्मसन्नद्ध नहीं है। हेतु-प्रत्यय का समूह हाने से चित्त भी नित्य परिवर्तनशील है।

यदि मन आत्मसन्नद्ध होता, तो वह अपनी इच्छा के अनुसार जो चाहे

कर सकता था। किन्तु वास्तविकता क्या है? इच्छा न होते हुए भी मन पाप का विचार करता, और न चाहने पर भी पुण्य से दूर भागता है, एक भी बात उसकी इच्छा के अनुसार नहीं हो पाती।

2. अगर कोई पूछे कि क्या यह शरीर अपरिवर्तनशील और अनित्य है, तो उत्तर यही होगा कि अनित्य है।

अनित्य वस्तु दु:खय होती है या सुखमय, ऐसा प्रश्न किए जाने पर, कोई भी, जब उसके ध्यान में आ जाए कि जो जन्म लेता है वह अंत में जरा और व्याधिग्रस्त होकर मृत्यु के अधीन हो जाता है तो यही उत्तर देगा कि दु:खमय होती है।

तो जो अनित्य और परिवर्तनशील है, दु:खमय है, उसे आत्मा मानकर अपनी वस्तु मानना बहुत बड़ा भ्रम है।

मन भी अनित्य है, दु:खमय है, अनात्म है। इसलिए व्यक्ति के मन और शरीर एवं उसे घेरे हुए जो बाह्य परिवेश हैं उनसे लगाव, उन्हें 'मैं' और 'मेरा' समझना भूल है।

यह प्रजाहीन मन ही है, जो 'मैं' या 'मेरा' मानकर आसक्य होता है।

शरीर और मन एवं इसका परिवेश हेतुजन्य हैं इसलिए सतत परिवर्तनशील एवं अस्थिर हैं।

मनुष्य का अस्थिर और चंचल मन बहते हुए जल या जलती हुई दीप-

शिखा के समान, या हर समय उछल-कूद करते हुए बन्दर के समान है; एक क्षण भी शान्त नहीं होता।

प्रज्ञावान मनुष्य को, ये बातें देख या सुनकर, शरीर और मन के प्रति आसक्ति का सर्वथा त्याग करना चाहिए। शरीर और मन दोनों की आसक्ति से मुक्त हो जाने पर ही निर्वाण की प्राप्त होती है।

3. इस संसार में सभी मनुष्यों के लिए पाँच बातें पूर्णतया असंभव हें—पहली, बुढ़ापा आने पर शरीर को वृद्ध होने से रोकन; दूसरी, शरीर के व्याधिग्रस्त होते हुए भी, व्यधिग्रस्त होने से रोकना; तीसरी, शरीर क मरण-योग्य होते हुए भी, मरने से उसे रोकना; चौथी वस्तु के विनाश योग्य होते हुए भी, विनाश से उसे रोकना.; पाँचवीं, वस्तु के क्षीण होने योग्य होते हुए भी, क्षय से उसे रोकना।

संसार के सामान्य लोग कभी न कभी इन अपरिहार्य तथ्यों से टकराकर व्यर्थ दु:ख और शोक में डूब जाते हैं, किन्तु जिन्होंने बुद्ध के उपदेश का ग्रहण किया है वे अपरिहार्य तथ्यों को अपरिहार्य जानकर इस प्रकार व्यर्थ दु:ख नहीं करते।

फिर इस संसार में चार सत्य हैं; पहला, सभी जीवित वस्तुएँ अविद्या से उत्पन्न होती हैं; दूसरा, सभी विषय-वासनाएँ अनित्य होती हैं, दु:खमय होती हैं, परिवर्तनशील होती है; तीसरा, जिसका भी अस्तित्व है, वह सब

अनित्य है, दु:खमय है, परिवर्तनशील है; चौथा, जिसे आत्मा कहा जा सके ऐसा कुछ भी नहीं है और इस संसार में 'मैं' और 'मेरा' भी कुछ नहीं है।

सभी वस्तुएँ अनित्य हैं, परिवर्तनशील हैं और अनात्म हैं–इन तथ्यों का बुद्ध के इस संसार में प्रादुर्भाव होने या न होने से कोई सम्बन्ध नहीं है। ये चारों सत्य अकाट्य और अपरिवर्तनशील हैं। बुद्ध इसे जानते हैं, उसका साक्षात्कार करते और प्राणियों को उपदेश देकर उनका मार्ग-दर्शन करते हैं।

2
मन की रचना

1. भ्रांति और विमोक्ष दोनों मन से उत्पन्न होते हैं। सारा दृश्य-प्रपंच और सृष्टि मनोगत, मन में व्यापारों के ही कारण है; ठीक किसी जादूगर की जादुई सृष्टि की तरह।

मानव मन की चंचलता और उसके व्यापारों की कोई सीमा नहीं होती। मलीन मन से मलीन संसार पैदा होता है, निर्मल मन से निर्मल सृष्टि उत्पन्न होती है, अत: बाह्य जगत मन से अबाध, मन के परे नहीं है।

जिस प्रकार चित्रकार चित्र बनता है, वैसे ही बाह्य जगत मन द्वारा बनाया जाता है। बुद्ध द्वारा रचित जगत क्लेशों से मुक्त और पवित्र होता है, मनुष्य द्वारा रचित जगत क्लेशकर, मलीन और अपवित्र होता है।

मन कुशल चित्रकार के समान तरह-तरह की सृष्टियों का चित्रण करता है। इस संसार में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जो मनोव्यापार के द्वारा निर्माण नहीं की जा सकती। यही बात बुद्ध और मनुष्यों के लिए भी कही जा सकती है। इसलिए, जहाप्र तक सभी वस्तुओं का चित्रण करने का सवाल है, मन बुद्ध और मनुष्य इन तीनों में कोई भेद नहीं है।

बुद्ध को इस बात का सही ज्ञान होता है कि सभी वस्तुएँ मन से पैदा होती हैं। अत: प्रकार का ज्ञान रखनेवाला मनुष्य की वास्तविक बुद्ध को देख पाता है।

2. किन्तु यह मन सदा भय, दु:ख और क्लेश से व्याप्त है। जो बातें घट चुकी हैं उनका उसे भय होता है और जो बातें अभी घटी नहीं या घट रही हैं, उनका भी। क्योंकि सारा घटनाक्रम अविद्याग्रस्त और लोभयुक्त मानव मन की उपज है।

इस अविद्याग्रस्त और लोभयुक्त मन से भ्रांतिमय संसार उत्पन्न होता है और उस भ्रांतिमय संसार के सब हेतु-प्रत्यय भी; संक्षेप में कहें, तो सब इसी मन के भीतर है, बाहर कहीं नहीं।

क्योंकि जन्म भी और मृत्यु भी दोनों ही मन से उत्पन्न होते हैं, इसलिए भ्रांतिमय जन्म-मृत्यु से संबद्ध मन के नष्ट हो जाने पर, भ्रांतिमय जन्म-मृत्यु के जगत का भी क्षय हो जाता है।

स्वनिर्मित भ्रांतिमय जगत से भीत मन अविद्या और मोहग्रस्त जीवन का निर्माण करता है। यदि हम यह समझ लें कि मन से परे भ्रांतिमय संसार नहीं है, तो मन निर्भय हो जाएगा और मलीनता से मुक्त होकर हम मोक्ष लाभ कर सकेंगे।

इस प्रकार यह मन से निर्मित जीवन-मरण-रूपी संसार मन के चलाये चलता है, उसी के शासन और बंधन में रहता है। भ्रांतिमय मन के कारण, दु:ख से परिपूर्ण संसार का निर्माण होता है।

3. सभी वस्तुएँ मन द्वारा ही नियंत्रित और शासित होती हैं। सभी मन के ही द्वारा निर्मित होती हैं। जैसे गाड़ी खींचनेवाले बैल के पीछे-पीछे चलती है, वैसे ही दु:ख मलीन आचार-विचारवाले मन का पीछा करता रहता है।

किन्तु यदि मनुष्य का आचार-विचार अच्छा है, शुभ और पवित्र है तो सुख उसकी छाया को तरह उसके पीछे-पीछे चलीता है। पापकर्म करने वाले लोगों को इह लोक में पापकर्म करने का दु:ख और परलोक में उनका बुरा फल भुगतना पड़ता है, जिससे उनके दु:ख की कोई सीमा नहीं रहती। किन्तु पुण्यकर्म करनेवाले लोग इह लोक में पुण्यकर्म करने का आनंद और परलाक में उसका अच्छा फल पाकर और अधिक सुखी होते हैं।

मन यदि अशुद्ध है, तो जीवनपथ दुर्गम हो जाता है, उस पर चलते हुए ठोकरें खाकर गिरना पड़ता है किन्तु यदि मन शुद्ध है, तो वही मार्ग प्रशस्त और सहज हो जाता है और यात्रा सुखमय होती है।

जो शरीर और मन की पवित्रता का आनंद उठाता है वह मार के जाल को तोड़कर बुद्ध के महाक्षेत्र की ओर प्रस्थान करता है। जिसका मन शम से परिपूर्ण होता है उसे शांति प्राप्त होती है और वह अधिकाधिक प्रयत्नपूर्वक दिन-रात अपने मन को संयत कर सकता है।

3
वस्तुओं का यथार्थ रूप

1. क्योंकि इस संसार की सभी वस्तुएँ हेतुजन्य हैं, इसलिए मूलतः उनमें कोई भेद नहीं होता। जो भेद दिखाई देता है वह केवल मनुष्यों की भ्रामक दृष्टि के कारण ही है।

आकाश में पूर्व-पश्चिम का कोई भेद नहीं होता, फिर भी लोग पूर्व-पश्चिम का भेद निर्माणकर, 'यह पूर्व है', 'वह पश्चिम है, ऐसा आग्रह रखते हैं।

गणित की संख्याओं में, एक से अनन्त तक की सभी संख्याएँ अपने आपमें परिपूर्ण होती हैं और उनमें परिमाण के कम-अधिक का कोई भेद नहीं होता है। फिर भी लोग लोभवश अपनी सुविधा के लिए उनके साथ

कम-अधिक का भेद जोड़ देते हैं।

मूलत: न जन्म है न मृत्यु, फिर भी लोग जन्म-मृत्यु में भेद करते हैं; मनुष्य के कर्म में अपने-आप में न कोई पुण्य होता है, न पाप, फिर भी लोग उसमें पाप-पुण्य का भेद देखते हैं, यह सब उनकी भ्रान्त दृष्टि के कारण होता है।

बुद्ध इन भेदों से परे रहते हैं, इस संसार को आकाश में गुजरने वाले बादल के समान अथवा आभास के समान देखते हैं। वे जानते हैं कि मन का लगाव और विलगाव सभी निरर्थक है। इसलिए वे मन के सभी व्यापारों से निर्द्वन्द्व और पृथक रहते हैं।

2. मनुष्य अपने मन के व्यापारों के कारण सभी वस्तुओं में आसक्त हो जाता है। वह संपत्ति में आसक्त होता है, धन में आसक्त होता है, कीर्ति में आसक्त होता है; जीवन में उसकी गहन आसक्ति होती है।

भव-अभव, पाप-पुण्य, सत्य-असत्य सभी वस्तओं के प्रति आसक्त होकर, मायाजाल में फँसकर वह दु:ख और क्लेशों को निमंत्रित करता है।

एक उदाहरण लें। एक मनुष्य ने लम्बी यात्रा करते हुए एक स्थान पर

एक बड़ी नदी देखकर इस प्रकार सोचा, ''इस नदी का इस ओर का किनारा खतरनाक, किन्तु उस ओर का किनारा सुरक्षित दिखाई देता है।'' यह सोचकर उसने नदी पार करने के लिए एक बेड़ा बनाया और उस बेड़े की सहायता से वह उस पार सुरक्षित उतर गया। वहाँ पहुँचकर उसने सोचा, ''इस बेड़े ने मुझे इस ओर सुरक्षित पहुँचा दिया है। इस बेड़े ने मेरी बड़ी सहायता की। इसलिए इस बेड़े को फेंक नहीं देना चाहिए। इसको कंधे पर उठाकर, जहाँ भी जाना हो वहाँ ले चलना चाहिए।

तो क्या यह कहा जा सकेगा कि उस मनुष्य ने बेड़े के प्रति जो करना आवश्यक था वही किया? कदापि नहीं। उसने एक अनावश्यक बोझ अपने कंधों पर लाद लिया। ऐसे आदमी को समझदार तो कदापि नहीं कहा जा सकता।

यह दृष्टान्त यही सिखाता है कि ''अच्छी वस्तु के प्रति भी आसक्त नहीं होना चाहिए और जब भी वह अनावश्यक बोझ हो जाए उसे फेंक देना चाहिए और बुरी वस्तु को तो तत्काल ही फेंककर मुक्ति पा लेनी चाहिए।''

3. वस्तुएँ न तो आती हैं, न जाती हैं, न उत्पन्न होती हैं, न नष्ट होती है; इसलिए न उन्हें पाया जाता है, न खोया जाता है।

बुद्ध उपदेश करते हैं कि सभी वस्तुएँ सत्-असत् की श्रेणी के परे होती हैं; न जन्त लेती हैं, न मरती हैं। अर्थात्, सभी वस्तुएँ हेतु-प्रत्ययों की एक कड़ी मात्र हैं। वस्तु के अपने स्वभाव का कोई वास्तविक अस्तित्व न होने के कारण वह सत् नहीं है; साथ ही क्योंकि वह

हेतु-प्रत्ययों से जुड़ी हुई हैं, इसलिए उसे असत् भी नहीं कहा जा सकता।

वस्तु का रूप देखकर उसके प्रति आसक्त हो जाना मोह हैं। यदि वस्तु का रूप देखकर भी उसके प्रति आसक्ति न पैदा हो, तो न भ्रान्त कल्पना होगी और न अंधमोह पैदा होगा। इस सत्य को आत्मसात्कर, अंधमोह से युक्त हो जाना ही साक्षात्कार है।

सचमुच यह संसार मिथ्या, स्वप्नवत है और इसकी धन-संपत्ति मृगतृष्णा के समान। चित्रलिखित दूरियों के समान दिखाई तो देती है, पर उसका कोई अस्तित्व नहीं होता सब कुछ मरीचिका के समान है।

4. यह विश्वास करना कि असंख्य हेतुप्रत्ययों के कारण उत्पन्न वस्तुएँ अनन्तकाल तक वैसी की वैसी असितत्व में रहेंगी, शाश्वतदृष्टि कहलाने वाला एक मिथ्या दृष्टिकोण है। साथ ही यह विश्वास करना कि ये सब पूर्णतया नष्ट होंगी, उच्छेदवादी या अनस्तित्ववादी एक और मिथ्या दृष्टिकोण है।

यह नित्यता, अनित्यता, सत्-असत् के भेद वस्तुओं के वास्तविक रूपों पर लागू नहीं होते, वे तो मनुष्य की मोहाच्छन्न दृष्टि के कारण दिखाई देते हैं। सभी वस्तुओं का मूल रूप मोहाच्छन्नता के कारण दिखाई देनेवाले इन भेदों से परे होता है।

हेतुप्रत्ययजन्य होने से सभी वस्तुएँ अनित्य हैं, परिवर्तनशील हैं। सत् वस्तुओं के समान वे अनन्त तथा नित्य नहीं होतीं। सतत परिवर्तनशील होने के कारण वे मरीचिका के समान हैं। लेकिन साथ ही यह भी सत्य है कि अपनी सतत परिवर्तनशीलता में वे अनन्त तथा नित्य भी होती हैं।

नदी मनुष्य को नदी के रूप में दिखाई देती है, किन्तु पानी को आग के रूप में देखनेवाले प्रेत को वह नदी के रूप में दिखाई नहीं देती। इसलिए नदी प्रेत के लिए 'है' ऐसा नहीं कहा जा सकता, और मनुष्य के लिए 'नहीं है' ऐसा नहीं कहा जा सकता।

इसी प्रकार सभी वस्तुओं के लिए 'हैं' भी नहीं कहा जा सकता 'नहीं, हैं' भी नहीं कहा जा सकता; सब मरीचिका के समान हैं।

लेकिन मूर्ख लोग इस संसर को सत्य समझकर उस भ्रान्त धारणा के अनुरूप आचरण करते हैं। और भ्रान्तिमय संसार को सत्य समझकर गलत आचरण के द्वारा अपना दु:ख-क्लेश बढ़ाते हैं।

इस संसार के लोग ऐसा मानते हैं कि इस भूल का मूल इस संसार में ही है; पर अगर यह संसार महज माया ही है, तो मनुष्य में यह पैदा करने की सामर्थ्य उसमें कहाँ से आई? भ्रांति तो इस सत्य का ज्ञान न

होने के कारण संसार को अनुभवसिद्ध या सत्य समझनेवाले अज्ञानी मनुष्य के हृदय में उत्पन्न होती है।

प्रज्ञावान मनुष्य इस सत्य का साक्षात्कार कर, माया को माया के रूप में देखता है, अतः कभी यह भूल नहीं करता।

4
मध्यम-मार्ग

1. निर्वाण-प्राप्ति के मार्ग का स्वीकार करने वालों को दो अतियों से सदा बचना चाहिए—एक तो वासनाओं के वश में होकर, काम-सुख-लिप्त जीवन जीना, और दूसरा अपने चित्त और शरीर को व्यर्थ क्लेश देनेवाला तापस जीवन जीना।

इन दोनों अतियों से अलग हृदय-चक्षु खोलनेवाला प्रज्ञा का विकास करनेवाला, निर्वाण की ओर ले चलने वाला मध्यम-मार्ग है

यह मध्यम-मार्ग कौन-सा है? सम्यक्-दृष्टि, सम्यक्-संकल्प, सम्यक्-वचन, सम्यक्-कर्म, सम्यक्-जीविका, सम्यक्-व्यायाम् (प्रयत्न), सम्यक्-स्मृति तथा सम्यक्-समाधि का यह आर्य-अष्टांगिक मार्ग है।

सभी वस्तुएँ हेतु प्रत्यय से उत्पन्न और क्षय होती रहती हैं, स्थिति और अभाव से विरहित होती हैं। पर मूढ़ लोग जीवन को कभी स्थिति के रूप में तो कभी अभाव के रूप में देखते हैं। केवल प्रज्ञावान लोग स्थिति और अभाव से परे होकर देखते हैं। यह मध्यम-मार्ग की सम्यक् दृष्टि है।

2. मान लीजिए, कि एक लकड़ी का कुन्दा किसी बड़ी नदी के प्रवाह में बहता जा रहा है। यदि यह कुन्दा दाएँ-बाएँ तट से न टकराए, बीच प्रवाह में न डूबे, जमीन पर न चढ़े, मनुष्य से बाहर न निकाला जाए, भँवर में न फँसे, और अन्दर से सड़ न जाए तो वह सीधा समुद्र में प्रवेश करेगा। जीवन भी प्रवाह में बहने वाले इस कुन्दे के समान है। यदि मनुष्य कामलालुप जीवन से आसक्त न हो अथवा व्यर्थ तपश्चर्या के पीछे पड़कर काय-क्लेश में न लगे; यदि मनुष्य अपनी अच्छाइयों का घमंड न करे या अपने दुष्कर्मो में लिप्त न हो; निर्वाण की खोज में न वह न तो मोह का तिरस्कार करे, न उससे भयभीत हो, तो वह मनुष्य मध्यम-मार्ग का आचरण कर रहा है।

निर्वाण-पथ पर चलनेवाले के लिए सब से महत्त्व की बात है कि वह किसी भी अति में न फँसकर सदा मध्यम-मार्ग का ही अनुसरण करता रहे।

यह जानकर कि वस्तुएँ न तो उत्पन्न होती हैं, न नष्ट होती हैं, न उनका कोई निश्चित स्वभाव ही होता है, उनके अधीन नहों होना चाहिए। अपने पुण्यकर्मो के भी अधीन नहीं होना चाहिए। किसी भी प्रकार के बंधन में फँसने से बचना चाहिए।

अधीन न होने का अर्थ है, लिप्त न होना, ग्रस्त न होना, आसक्त न होना। निर्वाण-पथ पर चलनेवाला मनुष्य न तो मृत्यु से डरता है, न जीने की कामना करता है। चंचल चित्त होकर इस या उस विचार के पीछे नहीं दौड़ता, न किसी भी एक विचार के चक्कर में फँसता है।

मनुष्य के हृदय में जैसे ही आसक्ति पैदा हुई, उसका मोहग्रस्त जीवन आरंभ हो जाता है। निर्वाण-पथ पर चलनेवाला मनुष्य न किसी बात का दु:ख करता है, न किसी वस्तु की कामना करता है; वह तो समदर्शी और शांत चित्त से जो कुछ सामने आए उसका सामना करता है।

3. निर्वाण का अपना कोई निश्चित रूप या स्वभाव नहीं है, जिससे कि वह अपने-आपको प्रकट कर सके; अत: स्वयं निर्वाण में ऐसा कुछ नहीं है, जिसका प्रबोधन किया जाए।

मोह और अज्ञान के कारण ही निर्वाण का अस्तित्व होता है; यदि ये नष्ट हो जाएँ, तो निर्वाण का भी लोप हो जाएगा। इसका विपरीत भी सत्य होगा। मोह और अज्ञान निर्वाण के कारण अस्तित्व में हैं; जब निर्वाण का लोप हो जाता है तब मोह और अज्ञान भी लुप्त हो जाते हं।

अत: निर्वाण ग्रहण करने की कोई वस्तु है, ऐसा समझने से सावधान रहिए, वरना वह भी बाधा-रूप बन जाएगा। जब अंधकारग्रस्त चित्त ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित हो जाता है, तब उसका लोप हो जाता है और

उसके लुप्त हो जाने पर निर्वाण नाम की वस्तु भी लुप्त हो जाती है।

निर्वाण की कामना करने और उससे ग्रस्त होने का अर्थ है कि मोह अभी शेष है; अत: निर्वाण के पथ पर चलने वाले लोगों को उससे ग्रस्त नहीं होना चाहिए और यदि वे निर्वाण तक पहुँच जाते हैं तो उन्हें वहीं तक रुकना नहीं चाहिए।

जब लोग इस अर्थ में निर्वाण प्राप्त करते हैं, तब उनके लिए सब कुछ निर्वाण बन जाता है; इसलिए लोगों को चाहिए कि वे तब तक निर्वाण के पथ पर आगे बढ़ते रहें, जब तक उनके लिए सांसारिक क्लेश और निर्वाण एक जैसे हो जाएँ, दोनों में कोई भेद न रहे।

4. यह जो सार्वभौम एकात्मता का सिद्धान्त है कि वस्तुओं में स्वभावत: कोई भेद-चिन्ह होते, इसी को शून्यता कहते हैं। शून्यता का अर्थ है अयथार्थता, अनुत्पत्ति, नि:स्वभावता, अभिन्नता। क्योंकि वस्तुओं का न तो कोई अपना रूप होता है, न लक्षण, इसलिए हमारे लिए यह कहना संभव नहीं है कि उनकी उत्पत्ति होती है या उच्छेद होता है। वस्तुओं का ऐसा कोई अपना स्वभाव नहीं होता जिससे उनका भिन्न-भिन्न शब्दों में वर्णन किया जा सके; इसलिए वस्तुओं को अयथार्थ कहा जाता है।

जैसा कि ऊपर बताया गया है सभी वस्तुओं की उत्पत्ति और उच्छेद

हेतु और प्रत्ययों के कारण होता है, कोई भी वस्तु अपने-आप अस्तित्व में नहीं रह सकती, हर एक वस्तु अन्य हर वस्तु से संबंधित हुआ करती है।

जहाँ-जहाँ प्रकाश होता है वहाँ छाया होती है; जहाँ दीर्घता होती है वहाँ लघुता होती है, जहाँ सफेद होता है वहाँ काला भी होता है। इस प्रकार वस्तुओं को अपना स्वभाव स्वयंसिद्ध नहीं होता इसलिए उन्हें अयथार्थ कहा जाता है।

इस तर्क के अनुसार निर्वाण का अज्ञान या मोह से कोई पृथक अस्तित्व नहीं होता, न ही अज्ञान का निर्वाण से। क्योंकि वस्तुओं के मूल स्वभाव में कोई भिन्नता नहीं होती, उनमें परस्पर भिन्नता नहीं हो सकती।

5. लोग अक्सर वस्तुओं में उनकी उत्पत्ति तथा उच्छेद देखते रहते हैं। किन्तु जब मूलत: वस्तुएँ। उत्पन्न ही नहीं होतीं, तो उनका उच्छेद भी नहीं होता।

जब लोग वस्तुओं का यह यथार्थ रूप देखने की दृष्टि पाते हैं, तब उन्हें ज्ञान होता है कि वस्तुओं में उत्पत्ति-उच्छेद दोनों नहीं होते और तब उन्हें उनकी अभिन्नता का साक्षात्कार होता है।

लोग क्योंकि आत्मा के अस्तित्व को मानते हैं, इसलिए अपनी वस्तुओं के प्रति आसक्त हो जाते हैं। किन्तु मूल में जहाँ आत्मा ही नहीं होता, वहाँ अपनी वस्तुओं का होना केसे संभव है! आत्मा और अपनी वस्तुओं का कोई अस्तित्व नहीं होता, यह जानने से ही ''अद्वैत'' का साक्षात्कार होता है।

लोग पवित्रता या अपवित्रता को मानते हैं और उनका आग्रह रखते हैं किन्तु मूलत: वस्तुओं में न तो पवित्रता होती है न अपवित्रता ये दोनों मनुष्य की कल्पना के ही खेल हैं।

लोग मानते हैं कि अच्छाई और बुराई मूलत: भिन्न होती हैं। किन्तु इन दोनों का अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता। निर्वाण-पथ पर चलने वाले लोग इन दोनों में कोई भेद नहीं करते, अत: वे न तो अच्छाई की प्रशंसा करते हैं और न बुराई की निन्दा और न अच्छाई का तिरस्कार करते हैं और न बुराई को क्षमा।

लोग दुर्भाग्य से डरकर सौभाग्य की अपेक्षा करते हैं। किन्तु इन दोनों का ध्यानपूर्वक निरीक्षण किया जाए, तो बहुत बार दुर्भाग्य ही सौभाग्य सिद्ध होता है और सौभाग्य दुर्भाग्य। ज्ञानी पुरुष सफलता से फूल न उठाकर या असफलता से निराश न होकर जीवन की सभी बदलती परिस्थितियों का समवृत्ति से सामना करना जानते हैं। इस प्रकार ''अद्वैत'' अभिन्नता के तत्त्व का साक्षात्कार किया जा सकता है।

इसलिए पारस्परिक भिन्नता जताने वाले ये सब शब्द जैसे कि सत् और असत्, सांसारिक तृष्णा और सत्य-ज्ञान, पवित्रता और अपवित्रता, अच्छाई और बुराई-ये सारे शब्द जो विरोधाभासी हैं, इसमें से कोई भी अपने सत्य स्वभाव में जाना या व्यक्त नहीं किया जा सकता। जब लोग ऐसी संज्ञाओं तथा उनसे उत्पन्न होने वाली भावनाओं से मुक्त रहत हैं, तब उन्हें शून्यता के सार्वभौम सत्य का साक्षात्कार होता है।

6. जैसे कि निर्मल और सुगंधित कमल पुष्प साफ-सुथरे मैदान या उपत्यका में नहीं, अपितु दलदल के कीचड़ में ही पैदा होता है, वैसे ही सांसारिक आसक्तियों की दलदल में से ही संबोधि का पावन साक्षात्कार उत्पन्न होता है। यहाँ तक कि नास्तिकों की मिथ्या दृष्टियाँ और सांसारिक आसक्तियों का मोह भी संबोध का बीज वपन कर सकते हैं।

सभी प्रकार के संकटों को झेलकर समुद्र के तल तक डुबकी लगाए, बिना अमूल्य और अद्‌भुत रत्नों की प्राप्ति नहीं हो सकती, वैसे ही मोह के भवसागर में डुबकी लगाए बिना निर्वाण के रत्न की प्राप्ति असंभव है। विकराल गिरिकन्दराओं और उपत्यकाओं-जैसी आत्मरति और आत्मसम्मोह से आकंठ ग्रसत हुए बिना न पथ ढूँढ़ने की इच्छा पैदा होगी और न अन्त में निर्वाण प्राप्त किया जा सकेगा।

कहा जाता है कि पुराने काल में एक ऋषि सत्यमार्ग की खोज की इच्छा से तलवारों के पहाड़ पर चढ़े थे और उन्होंने अपने-आपको आग में भी झोंक दिया था, किन्तु उन्हें न तो चोट आई न वे आग में झुलसे। अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन्होंने सब सहन किया। पथ पर चलते हुए, संकटों का सामना करने की तैयारी हो, तो आत्मसम्मोह के तीक्ष्ण कंगूरों पर और द्वेष की आग में भी शीतल वायु बहती हुई मिलेगी और अन्त में उसे साक्षात्कार होगा कि जिन सांसारिक आसक्तियों और आत्मसम्मोह से वह संघर्ष कर रहा था व ही निर्वाण हैं।

7. बुद्ध का उपदेश हमें दो परस्पर-विरोधी दृष्टियों की विभिन्न धारणाओं

में अभिन्नता के सत्य का दर्शन कराता है। अच्छी और सत्य मानी जानेवाली किसी भी बात की कामना करना तथा बुरी ओर असत्य मानी जानेवाली किसी अन्य बात से भागते रहना–दोनों ही गलत हैं।

अगर लोग इस बात का आगह रखें कि सभी वस्तुएँ असत्य और परिवर्तनशील हैं तो उतनी ही बड़ी भूल होगी जितना यह आग्रह रखना कि सभी वस्तुएँ सत्य और अपरिवर्तनशील हैं। यदि मनुष्य आत्मदृष्टि से ग्रस्त हो जाए तो वह भी भूल होगी, क्योंकि वह उसे असंतोष या दु:ख से बचा नहीं सकेगी। अगर वह विश्वास करे कि आत्मा नहीं है, तो वह भी भूल होगी और सत्यमार्ग की साधना से भी उसे कोई फल नहीं मिलेगा। अगर लोग आग्रह रखें कि सब कुछ दु:खमय है तो वह भी भूल होगी; यदि वे आग्रह रखें कि सब कुछ सुखमय है, तो वह भी भूल होगी। बुद्धि इन दुराग्रही धारणाओं से हटकर मध्यम प्रतिपद् का उपदेश करते हैं, जहाँ भिन्नता अभिन्नता में परिवर्तित होती है।

तृतीय अध्याय

बुद्धत्व

1
पवित्र मन

1. मनुष्य विविध प्रकार के और विविध मनोवृत्तियोंवाले होते हैं। कोई सयाने होते हैं तो कोई मूर्ख, कोई अच्छे स्वभाव के होते हैं तो कोई दुष्ट, कुछ लोगों का मार्गदर्शन करना आसान होता है तो कुछ लोगों का कठिन, कुछ लोगों के हृदय पवित्र होते हैं तो कुछ के अपवित्र; किन्तु जहाँ तक निर्वाण-प्राप्ति का सवाल है, ये सब भेद नगण्य हैं। यह संसार मानो विविध प्रकार के पौधों वाला एक कमल-सरोवर है, जिसमें विविध छटाओं के फूल खिले हुए हैं। कुछ सफेद हैं, कुछ गुलाबी, कुछ नीले, कुछ पीले; कुछ पानी के अंदर बढ़ते हैं, कुछ पानी पर अपने दल फैलाते हैं तो कुछ पानी के ऊपर अपने दल उठाते हैं। मनुष्य जाति में और भी अधिक भेद हैं। उनमें लिंक का भेद भी है, किन्तु यह कोई महत्त्वपूर्ण भेद नहीं है, क्योंकि उचित साधना के द्वारा पुरुष और स्त्रियाँ दोनां निर्वाण की प्राप्ति कर सकते हैं।

हाथी का महावत बनने के लिए मनुष्य में पाँच गुण होने चाहिए : अच्छा स्वास्थ, दृढ़ विश्वास, अध्यवसाय, सच्चाई तथा प्रजा। बुद्ध के आर्यमार्ग का अनुसरण करके निर्वाण प्राप्त करने के लिए भी ये पाँच गुण

अत्यावश्यक हैं। यदि ये पाँच गुण हों, तो पुरुष हो या स्त्री, किसी के लिए भी बुद्ध का उपदेश सीखने में दीर्घ काल की आवश्यकता नहीं होगी। क्योंकि मानवमात्र में निर्वाण-प्राप्ति के लिए अनुकूल स्वभाव निहित है।

2. निर्वाण-प्राप्ति की साधना में लोग अपनी आँखों से बुद्ध को देखते हैं, अपने हृदय से बुद्ध में विश्वास करते हैं। जो आँखें बुद्ध को देखती है और जो हृदय बुद्ध में विश्वास करता है, ये वही आँखें हैं और वही हृदय है, जो अब तक जन्म और मृत्यु के संसार में भटक रहे थे।

यदि राजा डाकुओं से तंग आ गया हो तो उन पर हमला करने के लिए पहले उसको उनका अड्डा ढूँढ़ निकालना होगा। वैसे ही जब मनुष्य सांसारिक आसक्तियों से ग्रस्त होता है, तो उनसे छुटकारा पाने के लिए पहले उसको उनका मूल जान लेना चाहिए।

जब आदमी घर में होता है और अपनी आँखें खोलता है तो वह सर्वप्रथम कमरे का अन्दरूनी भाग देखेगा और उसके बाद ही खिड़की के बाहर का दृश्य देख पाएगा। कमरे के अन्दर की चीज़ें देखे बिना, केवल बाहर की चीज़ें देखनेवाली आँख नहीं होती।

यदि इस शरीर के भीतर मन नाम की कोई वस्तु हो, तो उसे सर्वप्रथम शरीर के अन्दर की बातों को ठीक से जान लेना चाहिए। फिर भी लोग

प्राय: शरीर के बाहर की बातें ही अधिाक जानते हैं और शरीर के भीतर की बातें कुछ भी जान नहीं पाते।

यदि मन शरीर के बाहर हो तो शरीर तथा मन परस्पर वियुक्त होंगे और मन को ज्ञात होने वाली बातें शरीर को ज्ञात न होंगी तथा शरीर को ज्ञात होनेवाली बातें मन को ज्ञात न होंगी। किन्तु वास्तव में मन को ज्ञात होनेवाली बातें शरीर अनुभव करता है, और शरीर को अनुभव होनेवाली बातें मन को ज्ञात होती है। अत: मन शरीर के बाहर है यह कहना असंगत है। आखिर, मनस्तत्त्व की विद्यमानता कहाँ है?

3. अचिंत्य पुरातन काल से सभी लोग इसलिए कर्म के बंधन में जकड़े हुए मोह में भटक रहे हैं कि वे दो मौलिक बातों से निपट अज्ञानी हैं।

पहली यह कि वे मोहग्रस्त चित्त को ही, जो कि जन्म-मृत्यु का मूल कारण है, अपना सत्य स्वभाव मान बैठते हैं। दूसरी यह कि वे नहीं जानते कि ठीक उनके मोहग्रस्त चित्त की उलटी तरफ छिपा हुआ होता है उनका साक्षात्कारप्रवण पवित्र चित्त, जो कि उनका सत्य स्वभाव है।

मनुष्य अपनी मुट्ठी भींचकर हाथ ऊपर उठाता है तब आँखें यह देखती हैं और चित्त इसे जानता है। किन्तु इसे जाननेवाला चित्त सत्य चित्त नहीं होता।

इस प्रकार का भेदमूलक चित्त केवल उन कल्पित भिन्नताओं को जाननेवाला चित्त होता है, जिन्हें लोभ तथा आत्म-संबंधित अन्य मनावृत्तिया

ने उत्पन्न किया है। यह भेदमूलक चित्त हेतु और प्रत्ययों के अधीन होने से उसका कोई यथार्थ स्वरूप नहीं होता और वह सतत परिवर्तनशील होता है। जहाँ लोग ऐसे चित्त को यथार्थ रूपवाला समझने लगते हैं, वहाँ मोह उत्पन्न हो जाता है।

फिर मनुष्य जब मुट्ठी खोलता है, तब चित्त जानता है कि मुट्ठी खुल गई है; किन्तु हिलता क्या है, हाथ या चित्त? या दोनो में से एक भी नहीं हिलता? यदि हाथ हिलता है तो उसके अनुसार चित्त भी हिलता है, और चित्त हिलता है तो उसके अनुसार हाथ भी। किन्तु हिलनेवाला चित्त केवल उसका सतही हिस्सा होता है, वह सत्य और मूलभूत चित्त नहीं होता।

4. वैसे तो मूलत: हरेक में विशुद्ध चित्त वास करता है, किन्तु वह बाहरी हेतुप्रत्यय-जनित मोह की धूल से आच्छादित होता है। किन्तु हर हालत मं यह मोहग्रस्त चित्त गौण या आनुषंगिक होता है, प्रधान कदापि नहीं।।

चंद्रमा कुछ समय के लिए मेघों से आच्छादित होते हुए भी, मेघों के कारण मलीन नहीं होता, न हिलाया जाता है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह धूल के समान मोह से आच्छादित चंचल चित्त को अपना सत्य चित्त समझने की भूल न करे।

उसको चाहिए कि वह विशुद्ध और अपरिवर्तनशील मूलभूत साक्षात्कार प्रवण मन को जागृत करने का प्रयास करके अपने-आपको सतत इस तथ्य का ध्यान दिलाता रहे। परिवर्तनशील, अपवित्र मन से ग्रस्त अपनी

विकृत कल्पनाओं द्वारा बहकाया जाकर वह मोह के रास्तों पर दिशाहीन भटकता रहता है।

मानवी चित्त की अशांति और अशुद्धियाँ लोभ एवं परिवर्तनशील परिस्थितियों के प्रति उसकी प्रतिक्रियाओं के कारण उत्पन्न होती हैं।

जो चित्त सामने उपस्थित होनेवाली किसी भी बात से उद्विग्न नहीं होता, जो सभी परिस्थितियों में पवित्र और शांत रहता है वही सत्य चित्त है और स्वामी भी वही है।

हम ऐसा नहीं कह सकते कि पांथ चला गया इसलिए, पांथशाला भी गायब हो गई। वैसे ही यह कहना संभव नहीं कि जीवन की परिवर्तनशोल परिस्थितियों से निर्मित कलुषित चित्त के गायब हो जाने से हमारा सत्य चित्त भी नष्ट हो गया। जो परिवर्तनशील परिस्थितियों के कारण बदलता रहता है वह चित्त का सत्य स्वभाव नहीं होता।

5. मान लीलिए कि यहाँ सभा गृह है, जो सूर्य के उदय होने से उजेला ओर उसक अस्त हो जाने से अंधकारपूर्ण हो जाता है।

सूर्य के साथ प्रकाश के लौट जाने की और रात्रि के साथ अंधेरे के लौट जाने की बात हम सोच सकते हैं। किन्तु उस प्रकाश और अंधेरे को अनुभव करनेवाली शक्ति कहीं भी चली नहीं जाती। प्रकाश और अंधेरे को अनुभव करनेवाला चित्त कहीं भी लौटाया नहीं जा सकता; उसे तो अपने सत्य स्वभाव में ही लौटाया जा सकता है।

सूर्य का उदय होने पर उजेला होते हुए देखनेवाला भी क्षणिक चित्त ही होता है, और सूर्य का अस्त होने पर अंधेरा होते हुए देखनेवाला भी क्षणिक चित्त ही होता है।

केवल क्षणिक, अस्थायी चित्त ही जीवन की बदलती हुई परिस्थितियों के साथ क्षण-क्षण में भिन्न-भिन्न भावनाओं का अनुभव करता है; यह यथार्थ और सत्य चित्त नहीं होता। प्रकाश और अंधकार का ज्ञान रखने वाला मूलभूत एवं सत्य चित्त ही मनुष्य का सत्य स्वभाव है।

पाप और पुण्य, प्रेम और द्वेष की अस्थायी भावनाएँ, जो कि बाहरी हेतु-प्रत्यय-जनित हैं, मनुष्य हृदय में संग्रहित दूषणों की क्षणिक प्रति क्रियाएँ मात्र होती हैं।

चित्त में पैदा होनेवाली इच्छाओं तथा ऐहिक वासनाओं की ओट में वास करता है, परिशुद्ध और दूषणरहित चित्त का मूलभूत सत्य सारतत्त्व।

पानी गोल बरतन में गोल और चौकोर में चौकोर दिखाई देता है, किन्तु पानी का अपना कोई विशिष्ट आकार नहीं होता। किन्तु लोग यह तथ्य जानते हुए भी अक्सर भूल जाते हैं।

लोग इसको अच्छा और उसको बुरा देखते हैं, इसको पसन्द और उसको नापसन्द करते हैं और वे सत् और असत् में भेद करते है; और फिर इन उलझनों में फँसकर और उनके प्रति आसक्त होकर कष्ट पाते हैं।

यदि लोग इन काल्पनिक और असत्य भेदों के प्रति अपनी आसक्तियों का त्याग करें तथा अपने मूल चित्त की पवित्रता को पुनः स्थापित करें तो उनका मन और शरीर दोनों दूषणों और दुःखों से मुक्त हो जाएँगे; वे मुक्ति में से पैदा होने वाली शांति का अनुभव करेंगे।

2
बुद्धत्व

1. हमने विशुद्ध और सत्य चित्त के मूलभूत होने की बात की; वही बुद्धता अर्थात बुद्धत्व का बीज है।

यदि हम सूर्य और रूई के बीज सूर्यमणि रखें तो हमें आग प्राप्त हो सकती है, किन्तु यह आग कहाँ से आती है? सूर्यमणि तो सूर्य से अत्यधिक दूर होता है, किन्तु सूर्यमणि द्वारा रूई पर आग अवश्य प्रकट होती है। यदि रूई में प्रज्वलित होने को स्वभाव न होता, तो आग कदापि न जलती।

उसी प्रकार, यदि बुद्ध की प्रज्ञा की किरणें मनुष्य के चित्त पर केन्द्रीभूत की जाएँ, तो उसका सत्य स्वभाव, जो कि बुद्धता ही है, प्रभासित होगा, और उसका प्रकाश अपनी दीप्ति से लोगों के मन आलोकित कर देगा और बुद्ध में श्रद्धा उत्पन्न करेगा। बुद्ध प्रज्ञा का सूर्यमणि सभी मानवी मनों पर केन्द्रित करते हैं और इस प्रकार उनमें श्रद्धा की अग्नि प्रज्वलित होती है।

2. लोग अक्सर अपने स्वभाव में मूलत: निहित निर्वाणमय बुद्धता से विमुख हो जाते हैं और उसके कारण अच्छे और बुरे के भेद में आसक्त होकर संसारिक वासनाओं के जाल में फँस जाते हैं और फिर अपने बंधनों और दु:खों पर विलाप करते रहते हैं।

आखिर क्या कारण है कि लोग, जिनमें कि मूलत: निर्वाणमय विशुद्ध चित्त निहित है, इस प्रकार भ्रांति में पड़कर, अपनी बुद्धता के प्रकाश को ढँककर, मोहमाया के सांसार में भटक रहे हैं?

पुराने जमाने में एक आदमी एक दिन सवेरे दर्पण के सामने बैठा तब उसमें अपना चेहरा और सिर भी न दीखने के कारण भौचक्का रह गया। किन्तु उसका चेहरा और सिर कहीं खो नहीं गए थे, बल्कि वह शीशे की उल्टी तरफ देख रहा था इसलिए मान बैठा था कि वे खो गए हैं।

यह मानकर कि प्रयत्न विशेष के द्वारा निर्वाण प्राप्त हो सकेगा, वैसा प्रयत्न करते हुए निर्वाण प्राप्त नहीं किया जा सके तो इस बात का दु:ख करना भी उतना ही मूर्खतापूर्ण है और अनावश्यक भी। निर्वाण में विफलता नहीं होती, विफलता उन लोगों को होती है जो भेदभावपूर्ण मन से निर्वाण की खोज करते हैं और नहीं जानते कि उनका मन सच्चा मन नहीं, लोभ-मोहग्रस्त काल्पनिक मन है जो सच्चे मन को आच्छादित किए हुए है।

अतः जब काल्पनिक विभ्रम दूर हो जाता है, तब निर्वाण अपने-आप प्रकट हो जाता है और इस बात का ज्ञान भी कि निर्वाण के अतिरिक्त काल्पनिक विभ्रम नाम की कोई वस्तु नहीं होती। साथ ही आश्चर्य की बात यह है कि एक बार निर्वाण प्राप्त हो जाए, तो मनुष्य के ध्यान में यह भी आ जाता है कि यदि काल्पनिक विभ्रम न होता तो निर्वाण भी संभव न था।

3. यह बुद्धता कभी नष्ट नहीं होती। भले ही मनुष्य पशु के रूप में जन्म ले, या बुभुक्षित प्रेतात्मा बनकर कष्ट पाए या नरक में गिरे, तो भी वह अपनी बुद्धता से कभी वंचित नहीं होता।

दूषित शरीर के भीतर भी, दूषित क्लेशों के तल में भी, वह बुद्धता अपनी दीप्ति में लिप्टी हुई, ढँकी हुई होती है।

4. पुरानी कथा है कि एक आदमी मित्र के घर जाकर शराब के नशे में सो गया। उस समय किसी जरूरी काम से उसके मित्र को यात्रा पर जाना पड़ा। जाते समय मित्र ने, उस आदमी के भविष्य के बारे में चिंतित होकर, एक अति मूल्यवान रत्न उस आदमी के वस्त्र में छिपा दिया, ताकि वह उसके काम आ सके।

इस बात से अनजान वह आदमी नशा उतर जाने पर दूसरे देशों में भटकते हुए, अन्न-वस्त्र के अभाव में कष्ट भोगता हुआ बहुत दिनों के

बाद जब संयोगवश उस आदमी की अपने पुराने मित्र से भेंट हुई तब मित्र ने उसको उसके वस्त्र में छिपाये हुए रत्न के बारे में बताया और उसका उपयोग करने को कहा।

नशे में चूर इस आदमी की कहानी के समान लोग जन्म और मृत्यु वाले इस जीवन में कष्ट भोगते हुए, विशुद्ध और अकलुषित बुद्धता के बहुमूल्य रत्न में बिलकुल अनभिज्ञ रहते हैं।

लोग इस तथ्य के बारे में कि हर एक में बुद्ध की प्रज्ञा है, भले ही अनभिज्ञ हों तथा कितने ही अधः पतित और मूढ़ क्यों न हों, बुद्ध उनके प्रति अनाश्वस्त नहीं होते, क्योंकि वे जानते हैं कि उनमें से निकृष्टतम आदमी में भी, निस्सन्देह बुद्धत्व के सभी गुण विद्यमान हैं।

अतः बुद्ध उनमें श्रद्धा पदा करते हैं, जो मूढ़ता से विमोहित अपनी बुद्धता को देख नहीं पाते; तथा उनकी भ्रान्ति को मिटाकर उन्हें उपदेश करते हैं कि उनमें और बुद्धत्व में वास्तव में कोई अन्तर नहीं है।

5. बुद्ध वे हैं जिन्होंने बुद्धत्व को प्राप्त कर लिया है और सामान्य मनुष्य वे हैं जिनमें बुद्धत्व-प्राप्ति की क्षमता होती है—दोनों में केवल इतना ही अन्तर है।

किन्तु यदि मनुष्य यह मान बैठे कि उसने निर्वाण प्राप्त कर लिया है, तो वह अपने को धोखा दे रहा है, क्योंकि यद्यपि वह उस दिशा में बढ़ तो रहा है, उसने अब तक बुद्धत्व को प्राप्त नहीं किया है।

बुद्धता बिना साधना और श्रद्धा पूर्ण प्रयत्न के प्रकट नहीं होती और

जब तब बुद्धत्व की प्राप्ति नहीं, होती कार्य की सिद्धि भी नहीं होती।

6. पुराने समय में, किसी राजा ने कुछ अंधे लोगों को हाथी के आसपास इकट्ठा किया और उनसे यह बताने को कहा कि हाथी कैसा होता है। पहले आदमी ने हाथी के दन्त का स्पर्श किया और कहा कि हाथी बहुत बड़ी गाजर जैसा है। दूसरे ने कान का स्पर्श करके कहा कि यह किसी बड़े पंखे जैसा है। तीसरे ने सूँड़ का स्पर्श करते हुए कहा कि यह तो मूसल के जैसा है। चौथे का हाथ हाथी के पैर को लगा तो उसने कहा कि यह ओखली जैसा है। और पाँचवें ने उसकी दुम पकड़कर कहा कि यह तो रस्सी जैसा है। उनमें से कोई भी राजा को हाथी का वास्तविक रूप बता नहीं पाया।

उसी प्रकार मनुष्य के स्वभाव का आंशिक वर्णन तो संभव हो सकता है पर उसके सत्य स्वभाव का, बुद्धता का वर्णन करना आसान नहीं है।

मृत्यु से भी नष्ट न होनेवाले और क्लेशों से भी कलुषित न होनेवाले मनुष्य के चिरंतन स्वभाव, उसकी बुद्धता का साक्षात्कार केवल एक ही उपाय से हो सकता है और वह उपाय है बुद्ध औ बुद्ध का आर्य उपदेश।

3
बुद्धता एवं अनात्मता

1. हम बुद्धता के बारे मे जिस प्रकार बताते आए हैं, उससे यह भ्रम पैदा

हो सकता है कि वह अन्य धर्मोपदेशों के 'आत्मा' के समान है, किन्तु वैसा नहीं है।

'आत्मा' की धारणा भेदभावपूर्ण चित्त द्वारा रचा गया कल्पना का खेल-मात्र है। चित्त ने पहले उसे ग्रहण किया और बाद में उसमें आसक्त हो गया जिसका कि उसे त्याग करना होगा। इसके विपरीत बुद्धता अनिर्वचनीय होने से पहले उसकी खोज करनी पड़ती है। एक अर्थ में आत्मा से उसका साम्य है, किन्तु वह 'मैं' अथवा 'मेरा' वाला 'आत्मा' नहीं है।

आत्मा के अस्तित्व में विश्वास करना, जो वस्तु नहीं है उसके अस्तित्व की कलपना करनेवाली विपरीत दृष्टि है; बुद्धता को अस्वीकार करना, जो वस्तु है उसके अस्तित्व को नकारनेवाली विपरीत दृष्टि है।

एक उदाहरण से यह स्पष्ट किया जा सकता है। एक माँ अपने बीमार बच्चे को चिकित्सक के पास ले गई। चिकित्सक ने बच्चे को दवाई दी आर माँ से कहा कि जब तक दवाई हजम नहीं होती, वह बच्चे को अपना दूध न पिलाए।

माँ ने अपने स्तन पर कड़वा लेप लगाया, ताकि बच्चा अपने-आप दूध पीना बंद कर दे। जब दवाई हजम होने जितना पर्याप्त समय बीत गया, तब माँ ने अपने स्तन को धोकर साफ किया और बच्चे को पीन के लिए दिया। माँ ने दया-भाव से बच्चे की जान बचाने के लिए यह उपाय किया, क्योंकि उसे बच्चे से प्यार था।

इस दृष्टान्त की माँ के समान, बुद्ध गलत धारणाओं को दूर करने के लिए तथा आत्मलिप्तता को नष्ट करने के लिए, आत्मा के अस्तित्व का इनकार करते है; और सब गलत धारणाएँ और आसक्तियाँ नष्ट हो जाती है, तब वे सत्य चित्त के तय का, अर्थात बुद्धता का उपदेश करते हैं।

आत्म-आसक्ति मनुष्य को भ्रम की ओर ले जाती है, जब कि अपनी बुद्धता के प्रति उसकी श्रद्धा उसे निर्वाण की ओर ले जाती है।

यह उस स्त्री के समान है जिसे विरासत में एक सन्दूक मिला था। यह न जानने के कारण कि उसके अन्दर सोना भरा पड़ा है, वह स्त्री तब तक गरीबी में जीवन बिताती रही जब तक कि किसी दूसरे मनुष्य ने वह सन्दूक खोलकर उसे अन्दर का सोना नहीं दिखाया। बुद्ध लोगों के चित्त को खोलते हैं और उन्हें अपनी बद्धता की पवित्रता दिखाते हैं।

2. यदि सभी में यह बुद्धता है तो एक दूसरे को ठगना या एक दूयरे की हत्या करने जैसे दु:ख इस संसार में क्यों हैं? और फिर पद और संपत्ति, धनी और निर्धन के इतने भेद भी क्यों ह?

एक पहलवान की कहानी है जो अपने भाल पर एक मूल्यवान रन्त का आभूषण धारण किए हुए था। एक बार जब वह कुश्ती लड़ रहा था तो वह रत्नाभूषण उसके भाल के मांस में घुस गया। उसने सोचा कि रत्न

खो गया और वह अपने घाव की चिकित्सा के लिए चिकित्सक के पास गया। जब चिकित्सक घाव साफ करने लगा तो उसे माँस में पैठा हुआ और खून व मिट्टी से लिपटा हुआ रत्न दिखाई पड़ा। उसनें शीशा उठाया और पहलवान को वह रत्न दिखाया।

बुद्धता भी इस कहानी में मूल्यवान रत्न के समान है : वह विविध क्लेशों की धूल या मैल से ढँक जाती है और लोग समझते हैं कि वे उसे खा बैठे हैं, किन्तु अच्छा धर्मोपदेशक उन्हें वह फिर प्राप्त करा देता है।

बुद्धता हर एक में रहती है, फिर भले ही वह लोभ, क्रोध और मूढता की परतों में कितनी ही गहरी धँसी हुई हो या अपने कर्मों और कर्मफलों में गड़ी हुई हो। बुद्धता वास्तव में न खोई जाती है, न नष्ट होती है; जब सभी क्लेशावरण हट जाते हैं तब जल्दी या देर से, वह प्रकट हो जाती है।

कहानी के पहलवान के समान, जिसे उसके माँस और रक्त में पैठा हुआ रत्न शीशे द्वारा दिखाया गया था, लोगों को भी उनकी बुद्धता, जो कि उनकी तृष्णा और लालसाओं में धँसी हुई है, बुद्ध के प्रकाश द्वारा दिखाई जाती है।

3. लोगों की परिस्थितियाँ और वातावरण कितने ही पृथक्-पृथक् क्यों न हों बुद्धता सदा शुद्ध और शान्त होती है। जैसे कि दूध का रंग सदा

सफेद ही होता है, चाहे गाय के चमड़े का रंग लाल, सफेद या काला क्यों न हो। उसी प्रकार लोगों के कर्मों का प्रभाव उनके जीवन पर या उनके कार्यों और विचारों का फल कितना ही भिन्न क्यों न हो, कोइ फर्क नहीं पड़ता।

भारत की एक कहानी के अनुसार हिमालय में ऊँची घास के नीचे छिपी हुई एक अद्‌भुत वनौषधि थी। दीर्घ काल तक लोगों ने उसकी खोज की, किन्तु व्यर्थ। आखिर एक बुद्धिमान मनुष्य ने उसकी मधुर गंध से उसे ढूँढ़ निकाला। जब तक यह बुद्धिमान मनुष्य जीवित रहा, उसने एक नाँद में उस वनौषधि को इकट्‌ठा करके रखा, किन्तु उसकी मृत्यु के बाद वह मीठा रसान दूर के किसी पहाड़ी झरने में छिपा रह गया और नाँद के अन्दर का पानी खट्‌टा, हानिकारक और विस्वाद हो गया।

उसी प्रकार बुद्धता सांसारिक लालसाओं के घने जंगल में छिपी पड़ी रहती है और क्वचित ही उसका पता लगता है। किन्तु बुद्ध ने उसे ढूँढ़ निकाला और लोगों को उसका दर्शन कराया, और क्योकि लोग अपनी अपनी पृथक क्षमताओं के अनुसार उसका स्वीकार करते हैं, हर एक व्यक्ति में उसका स्वाद अलग हो जाता है।

4. हीरा, जो कि सभी ज्ञात पदार्थों में सब से कठिन है, चूर्ण नहीं किया जा सकता। बालू या पत्थर को कूटकर चूर्ण किया जा सकता है, किन्तु हीरों को कोई क्षति नहीं पहुँचती। बुद्धता भी हीरे के समान है और इसलिए उसको तोड़ा नहीं जा सकता।

शरीर और चित्त का नाश हो जाए, ता भी बुद्धता का कभी नाश नहीं किया जा सकता।

बुद्धता, सचमुच मानवी स्वभाव का सर्वोत्कृष्ट लक्षण है। अक्सर संसार में पुरुष को श्रेष्ठ और स्त्री को कनिष्ठ समझने की प्रथा है, किन्तु बुद्ध के उपदेश में स्त्री-पुरुष में इस प्रकार का कोई भेदभाव नहीं किया जाता, केवल बुद्धता को पहचानना श्रेष्ठ माना जाता है।

अशुद्ध सोने को गलाकर उसमें से सभी अशुद्धियाँ निकालने से शुद्ध सुवर्ण की प्राप्ति होती है यदि मनुष्य अपनी अशुद्ध चित्त को गलाकर उसमें से सांसारिक लालसाओं और अहंता की अशुद्धियों को निकाल दे तो उसे विशुद्ध बुद्धता की पुनः प्राप्ति होगी।

चतुर्थ अध्याय

क्लेश

1
चित्त की अशुद्धियाँ

1. बुद्ध को ढँककर रखनेवाले क्लेश दो प्रकार के होते हैं।

पहला प्रकार बौद्धिक क्लेशों का है; दूसरा, भावनात्मक क्लेशों का।

ये दो प्रकार के क्लेश, सभी क्लेशों का मूलभूत वर्गीकरण हैं, किन्तु इन सभी क्लेशों का मूल ढूँढ निकालें तो उसमें एक तो अविद्या है और दूसरी वासना।

अविद्या और वासना में सभी प्रकार के क्लेशों को पैदा करने की निर्बाध सामर्थ्य होती है। वास्तव में ये दोनों ही सभी क्लेशों का उद्‌गमस्थान हैं।

अविद्या का अर्थ अज्ञान है, वस्तुओं की यथार्थता को जानने की

अक्षमता। वासना तीव्र आसक्ति है, जिसके मूल में जीने का मोह होता है; देखने की चाह, सुनने की चाह। सभी प्रकार की आसक्ति यही है, जो कभी उलटकर मरने की आकांक्षा मे भी बदल सकती है।

इस अविद्या और वासना से ही तरह-तरह के क्लेश पैदा होते हैं, जैसे कि लोभ, क्रोध, मूढ़ता मिथ्यादृष्टि, द्वेष, ईर्ष्या, चापलूसी, छल, घमण्ड, तिरस्कार, अनास्था आदि।

2. लोभ का उद्‌भव पसन्द आई हुई वस्तु देखकर अनुचित विचार धारण करने के कारण होता है। क्रोध का उद्‌भाव नापसन्द वस्तु को देखकर अनुचित विचार धारण करने के कारण होता है। मूढ़ता अज्ञान जनित विवेकहीनता है। मिथ्यादृष्टि अयथार्थ उपदेश को ग्रहण करके, अयथार्थ विचार रखने के कारण पैदा होती है।

ये तीन-लोभ, क्रोध और मूढ़ता—इस लोक के त्रिताप हैं। लोभ की अग्नि अतिलोभ के कारण सदसद्‌विवेकहीन व्यक्ति को जलाती है; क्रोधाग्नि क्रोध के कारण प्राणियों की जान को हानि पहुँचाने वाले मनुष्य को जलाती है; मूढ़ता की अग्नि चित्तभ्रान्ति में भटककर बुद्ध के उपदेश को न जाननेवाले मनुष्य को जलाती है।

सचमुच यह संसार विविध प्रकार की अग्नियों से जल रहा है। लोभ की अग्नि, क्रोध की अग्नि, मूढ़ता की अग्नि, जन्म, जरा, व्याधि और

मृत्यु की अग्नि, शोक, विलाप, दु:ख और वेदना की अग्नि, विविध प्रकार की अग्नियों से यह धधकता हुआ जल रहा है। क्लेशों की ये अग्नियाँ अपने-आपको तो जलाती हैं, साथ ही दूसरों को भी झुलसाती हैं और मनुष्य को काया, वाचा और मन से दुष्कर्म करने के लिए बाधित करती हैं। इतना ही नहीं, इन अग्नियों से बने व्रणों में से पीप निकलती है, जो छूनेवालों में ज़हर फैलाकर उन्हें पापमार्ग की ओर ले जाती है।

3. लोभ संतोष-प्राप्ति की कामना से पैदा होता है, क्रोध असंतोष के कारण पैदा होता है तथा मूढता अपवित्र विचारों के कारण पैदा होती है। लोभ में पाप-विचार की मलीनता कम होती है किन्तु उसे मिटाना आसान नहीं होता; क्रोध में पाप की मलीनता अधिक होती है, किन्तु उसे जल्दी हटाया जा सकता है; मूढ़ता में पाप की मलीनता भी अधिक होती है और उसे हटाना भी आसान नहीं होता।

अत: मनुष्य को चाहिए कि वह इन तीन अग्नियों को, जब भी और जहाँ भी वे प्रकट हों, बुझा दे। इसके लिए उसे सच्चा संतोश किससे प्राप्त हो सकेगा, इसका सही निर्णय करना होगा। जीवन की असंतोषजनक वस्तुओं के प्रति अपने चित्त को पूर्णतया नियंत्रित करना होगा। तथा सदा बुद्ध के सद्भावना और करुणा के उपदेश का स्मरण करते रहना होगा। यदि चित्त सच्चे, पवित्र और नि:स्वार्थ विचारों से भरा रहे तो उससे सांसारिक वासनाएँ जड़ पकड़ नहीं सकतीं।

4. लोभ, क्रोध और मूढ़ता ज्वर के समान हैं। यदि कोई भी व्यक्ति इनमें से किसी एक भी ज्वर से पीड़ित हो जाए तो वह कितने ही सुन्दर और

लम्बे-चौड़े कमरे में क्यों न सोया हो, उस ज्वर के कारण पीड़ित होगा और नींद न आकर उसे कष्ट भोगना पड़ेगा।

जो मनुष्य इन तीन क्लेशों से मुक्त है वह शिशिर की सर्द रात में, पेड़ के पत्तो से बनी पतली शय्या पर भी चैन से सो सकेगा अथवा ग्रीष्म की गर्म रात में छोटी-सी बन्द कोठरी में भी आराम से सोने में उसे कोई कठिनाई नहीं होगी।

ये तीनों—लोभ, क्रोध और मूझ़ता—सभी मानवी दु:ख के स्रोत हैं। दु:ख के इन स्रोतों से मुक्ति पाने के लिए हमें शीलों का पालन करना चाहिए, ध्यान का अभ्यास करना चाहिए और प्रज्ञा प्राप्त करनी चाहिए। शीलों के पालन से लोभ की मलीनता दूर होती है, सम्यक् समाधि से क्रोध की मलीनता दूर होती है तथा प्रज्ञा की प्राप्ति से मूढ़ता की मलीनता दूर होती है।

5. मनुष्य की वासनाओं का कोई अन्त नहीं। यह तो उस मनुष्य की तृष्णा के समान है, जो खारा पानी पी रहा है; उसे संतोष तो मिलता ही नहीं, उल्टे तृष्णा बढ़ती जाती है।

यही हालत अपनी वासनाओं की तृप्ति खोजने वाले मनुष्य की होती है; उसका तो केवल असंतोष ही बढ़ता जाता है और उसके कष्टों का कोई अन्त नहीं होता।

वासनाएँ कभी पूर्ण रूप से तृप्त नहीं की जा सकतीं, उपभोग के बाद क्लांति और खेद ही शेष रहते हें, जिन्हें किसी भी तरह मिटाया नहीं जा

सकता; और सब वासनाओं की पूर्ण तृप्ति नहीं हो सकती, तब मनुष्य अक्सर पागल हो जाता है।

अपनी वासनाओं की तृप्ति के लिए लोग आपस में लड़ते-झगड़ते हैं, राजा राजा के साथ, अनुचर अनुचर के साथ, माँ-बाप बच्चे के साथ, भाई भाई के साथ, बहन बहन के साथ, मित्र मित्र के साथ; अपनी वासनाओं की तृप्ति के लिए वे आपस में लड़ेंगे और एक दूसरे की हत्या भी करेंगे।

लोग अक्सर वासनाओं की तृप्ति के लिए अपना जीवन बरबाद कर देते हैं। वे चोरी करते हैं, धोखा देते हैं और व्यभिचार भी करते हैं। और जब पकड़े जाते हैं तक अपमानित होकर उन्हें सजा भुगतनी पड़ती है।

वे अपनी वासना-तृप्ति के लिए पाप पर पाप करते जाते हैं, और इहलोक में कष्ट भुगतने के साथ-साथ मरने के बाद परलोक में भी अंधनरक में प्रवेश कर तरह-तरह के कष्ट भोगते हैं।

6. सभी प्रकार के क्लेशें में वासना सबसे दुर्दम्य है, सभी क्लेश उसके पीछे-पीछे चलते हैं।

वासना की भूमि में अन्य सभी क्लेश अंकुरित होते हैं, वासना सभी सदाचारों का भक्षण करनेवाली राक्षसी है। वासना फूलों की वाटिका में छिपी हुई नागिन है, जो सौन्दर्य के सुखोपभोग की लालसा में भटकते हुओं को आकर्षित कर अपने विष से मार डालती हैं। वासना वृक्ष पर चढ़कर उसको शाखा-प्रशाखाओं को आकर्षित कर वृक्ष का गला घोंटने

वाली लता के समान मनुष्य के चित्त को लपेटकर, उसकी सभी सत्प्रवृत्तियाँ चूस डालती है। वासना ऐसा आसुरी आमिष है जिसे निगलकर मूर्ख मनुष्य बुराइयों के दलदल में गहरा और गहरा धँसता चला जाता है।

कुत्ता सूखी हड्डी को अपने ही मुँह के खून से लथपथ हो जाने पर भी तब तक चूसता रहेगा जब तक कि थक और निराश नहीं हो जाता। वासना भी मनुष्य के लिए कुत्ते की उस हड्डी के समान है, वह वासना को तब तक भँभोड़ता रहेगा जब तक कि थक नहीं जाता।

यदि दो वन्य पशुओं के सामने एक माँस का टुकडा फेंका जाए तो वे उसे पाने के लिए लड़ेंगे और एक दूसरे को नोंच डालेंगे। हाथ में मशाल लेकर हवा के विरुद्ध चलनेवाला मूर्ख मनुष्य अपने आपको जला देगा। इन दोनों वन्य पशुओं तथा उस मूर्ख मनुष्य के समान ही मनुष्य वासना के वशीभूत अपने-आपको घायल करता और जला देता है।

7. बाहर से उड़कर आनेवाले विषैले बाणों से बचना कठिन नहीं है, पर अन्दर से आक्रमण करनेवाले विषैले बाणों से बचना मुश्किल है। लोभ, क्रोध, मूढ़ता और अहंकार ये चार विषैले बाण मन में पैदा होत हैं और उसे विषाक्त कर देते हैं।

चित्त में जब लोभ, क्रोध और मूढ़ता होती है, तब लोग वाणी से असत्य बोलने लगते हैं, धोखा देते हैं, निन्दा करने लगते हैं, और अपने

कहे से मुकरने लगते हैं और अन्त में हत्या, चोरी और व्यभिचार में प्रवृत्त हो जाते हं।

चित्त के तीन, वाणी के चार और शरीर के तीन-ये सब मिलाकर दस पाप होते हैं।

जानबूझ कर असत्य बोलने की आदत पड़ जाए, तो कोई भी पापकर्म करने में झिझक नहीं होती। पापकर्म करने के लिए झूठ बोलना पड़ता है और झूठ बोलने की आदत पड़ने के कारण, बिना किसी झिझक के पापकर्म करने की आदत हो जाती है।

लोभ, वासना, भय और क्रोध सभी मूझ़ता से पैदा होता हैं तथा दुर्भाग्य और संकट भी मूढ़ता से ही पैदा होते हैं। सचमुच मूढ़ता सबसे बड़ा विष है।

8. क्लेशों के कारण कर्म पैदा होता है, कर्म के कारण दु:ख पैदा होता है। क्लेश, कर्म और दु:ख इन तीनों का चक्र सतत चलता रहता है।

इस चक्र का न तो आरंभ होता है न अंत। लोग इस संसार (संसृति) से छुटकारा पा नहीं सकते। अनंत काल तक घूमते रहनेवाले इस संसार चक्र में फँसकर, मनुष्य इस जन्म से अगले जन्म की ओर अनन्त काल तक जन्मान्तर करता रहता है।

इस अनंत संसार चक्र के बीच निरंतर घूमते हुए एक मनुष्य के जन्म जन्मांतरों की दाह-अस्थियों को इकट्ठा किया जाए तो उनकी ऊँचाई

पर्वत से भी अधिक होगी, और उसके द्वारा पिये गये माँ के दूध को इकट्ठा किया जाए तो वह समुद्र के पानी से भी अधिक होगा।

सभी मनुष्यों में बुद्धता तो अवश्य होती है, वह वासनाओं के कीचड़ में इतनी दबी होती है कि उसका अंकुरित होना आसान नहीं होता। इसीलिए संसार में इतना दु:ख भरा हुआ है और दु:खी जीवों का अन्तहीन पुनर्जन्म होता रहता है।

2
मनुष्य का स्वभाव

1. मनुष्य का स्वभाव एक घने जंगल के समान है, जिसका कोई प्रवेश-द्वारा नहीं और जिसमें प्रवेश पाना मुश्किल है। अपेक्षाकृत, पशु के स्वभाव को समझना असान है। फिर हम मनुष्य के स्वभाव का उसकी चार प्रमुख भिन्नताओं के आधार पर साधारण रूप से वर्गीकरण कर सकते हैं।

पहला प्रकार उन लोगों का है, जो मिथ्या उपदेशों के कारण कठोर तपस्या करके अपने-आपको कष्ट देते हैं। दूसरा उन लोगों का है, जो अपनी क्रूरता, चोरी, हिंसा तथा अन्य निर्दय कर्मों से दूसरों को कष्ट देते

हैं। तीसरा उन लोगों का है, जो अपने साथ दूसरों को भी कष्टों से बचाते हैं। चौथे प्रकार के ये लोग, बुद्ध के उपदेश का अनुसरण करके, लोभ, या मूढ़ता के वश नहीं होते, हिंसा या चोरी नहीं करते, अपितु दयामय और ज्ञानमय जीवन व्यतीत करते हैं।

2. फिर इस संसार में लोगों के और तीन प्रकार हैं। पहला प्रकार उन लोगों का है जो शिला पर खुदे हुए अक्षरों के समान होते हैं, वे शीघ्र क्रोध के वश हो जाते हैं और दीर्घ काल तक उनका क्रोध शांत नहीं होता। दूसरे प्रकार के लोग रेत पर लिखे गए अक्षरों के समान होते हैं, वे भी शीघ्र क्रोध के वश हो जाते हैं, पर उनका क्रोध दीर्घ काल तक नहीं टिकता। तीसरे प्रकार के लोग पानी पर लिखे गए अक्षरों के समान होते हैं, वे अपने क्षणिक विचारों के वश नहीं होते; वे निन्दा या अवांछनीय अफवाहों की ओर ध्यान नहीं देते; उनका चित्त सदा पवित्र और अविचलित रहता है।

फिर और तीन प्रकार के लोग होते हैं। पहले प्रकार के लोग घमंडी होते हैं, अविचार से कार्य करते हैं और सदा असंतुष्ट रहते हैं; उनके स्वभाव को आसानी से समझा जा सकता है। दूसरा प्रकार उन लोगों का है जो विनयशील होते हैं और विवेकपूर्ण व्यवहार करते हैं; उनके स्वभाव को समझना कठिन होता है। तीसरा प्रकार उन लोगों का है, जिन्होंन अपनी वासनाओं पर पूरा काबू पा लिया है; उनके स्वभाव को समझना बिल्कुल असंभव है।

इस प्रकार लोगों का अलग-अलग प्रकारों में वर्गीकरण तो किया जा सकता है, किन्तु उनके स्वभाव को समझना बहुत कठिन है। केवल बुद्ध ही उनको समझते हैं और अपनी प्रज्ञा से भिन्न-भिन्न उपदेशों द्वारा उनका मार्गदर्शन करते हैं।

3
मानवीय जीवन

1. मानवीय जीवन का वर्णन करनेवाला एक दृष्टान्त है। एक बार एक मनुष्य किसी नदी में प्रवाह की ओर नाव खे रहा था। किनारे पर से किसी ने उसे सावधान किया, ''नदी की तेज़ धारा में इतनी आतुरता से नाव मत चलाओ। आगे कई प्रपात हैं और भँवर भी; और चट्टानी कन्दराओं में मगरमच्छ और यक्ष घात लगाये बैठे हैं। इसी प्रकार चलते गए तो सर्वनाश हो जाएगा।''

इस दृष्टान्त की 'तेज धारा' वासनामय जीवन है; 'आतुरता से नाव चलाना' अपने शरीर के प्रति आसक्ति है: 'आगे के प्रपात' आनेवाले दु:खों और कष्टों को सूचित करते हैं; 'भँवर' भोग-विलास हैं, 'मगरमच्छ और यक्ष' भोगमय विलासी जीवन के बाद आनेवाले क्षय और मृत्यु हैं; सावधान करनेवाला 'किनारे पर कोई' भगवान बुद्ध हैं।

और एक दृष्टान्त है। एक मनुष्य अपराध करके भाग रहा है। सिपाही उसका पीछा कर रहे हैं, इसलिए जब उसे रास्ते में एक पुराना कुआँ मिलता है, जिसके अन्दर कुछ बेलें लटक रही हैं, वह एक बेल के सहारे अन्दर उतरकर छुपने का प्रयास करता है। नीचे उतरते समय उसे कुएँ के तल में विषैले साँप दिखाई देते हैं, इसलिए वह जान बचाने के

लिए बेल को पकड़ रखने का निश्चय करता है। कुछ समय के बाद, जब उसके हाथ थक जाते हैं, वह देखता है कि दो चूहे, एक सफदे और एक काला, उस बेल को कुतर रहे हैं।

यदि बेल टूट जाए, तो वह नीचे साँपों के बीच गिर जाएगा और मर जाएगा। अचानक, उसकी दृष्टि ऊपर जाती है, तो उसे ठीक अपने मुँह के ऊपर एक मधुमक्खियों का छत्ता दिखाई देता है, जिसमें से कभी-कभी शहद की एकाध बूँद उसके मुँह में टपक जाती है। वह मनुष्य अपने सभी खतरे भूलकर आनन्द से शहद का स्वाद लेने लगता है।

यहाँ 'एक मनुष्य' वह है जो अकेले कष्ट सहने और मरने के लिए पैदा होता है। 'सिपाही' और 'विषैले साँप' मनुष्य का अपनी आसक्तियों में लिपटा शरीर है। 'पुराने कुएँ के अन्दर की बेल' मनुष्य का जीवन है, दो चूहे, एक सफेद और एक काला' दिन और रात, अर्थात बीतने वालो काल के सूचक हैं। 'शहद की बूँद' दृष्टि के सामने के क्षणिक शारीरिक सुख हैं, जो बीतते काल के साथ आनेवाले दु:ख को भुला देते हैं।

2. यहाँ और एक दृष्टान्त है। एक राजा एक डिब्बों में चार विषैले साँपों को रखकर वह डिब्बा अपने नौकर को सँभालकर रखने के लिए दे देता है। वह नौकर को उनकी अच्छी सँभाल रखने की आज्ञा देता है और चेतावनी देता है कि यदि एक भी साँप कुपित हुआ तो गर्दन उड़ा दी जाएगी। वह नौकर डर जाता है और डिब्बा फेंककर भाग निकलता है।

राजा उसे पकड़ने के लिए पाँच सिपाही भेजता है। वे नौकर को सुरक्षित वापस ले जाने के हेतु, मैत्री भाव से उसके पास आ जाते हैं,

किन्तु नौकर उनके मैत्रीपूर्ण व्यवहार पर विश्वास नहीं करता और दूसरे गाँव भाग जाता है और वहाँ छिपने का स्थान ढूँढ़ता है।

तब आकाशवाणी होती है कि इस गाँव में कोई आदमी नहीं रहता और फिर आज रात छह डाकू इसपर हमला करनेवाले हैं। वह नौकर घबड़ाकर वहाँ से भागता है। एक प्रचंड लहरोंवाली तेज़ नदी उसका रास्ता रोकती है। उसे पार करना आसान नहीं है, फिर भी इस पार के संकटों का ख्याल करके वह एक बेड़ा बना लेता है और किसी तरह नदी पार कर जाता है। उस पार जाकर उसे सुरक्षा और शांति प्राप्त होती है।

'डिब्बे के अंदर के चार विषैले सर्प' शरीर को बनानेवाले चार भूत-पृथ्वी, आप, तेज और वायु हैं। यह शरीर वासना के वश में और चित्त का शत्रु होता है, इसलिए शरीर से भागने की कोशिश करता है।

'मित्रभाव से पास आने वाले सिपाही' पाँच स्कंध-रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान हैं, जो शरीर और मन की रचना करते हैं।

'छिपने का स्थान' मनुष्य की छह इन्द्रियाँ हैं; और 'छह डाकू' इन इन्द्रियों के छह विषय हैं। इस प्रकार छह इन्द्रियों में संकटों का अनुभव कर वह फिर एक बार भाग निकलता है और सांसारिक वासनाओं की तीव्र धारा के किनारे पहुँचता है।

फिर वह बुद्ध के आदेश का बेड़ा बना लेता ह और इस तीव्र धारा को सुरक्षित पार कर जाता है।

3. जीवन में ऐसे तीन प्रसंग होते हैं जब न तो पुत्र माँ को बचा सकता है न माँ पुत्र को, जैसे अग्निकांड, बाढ़ और चोरी। फिर भी ऐसे तीन प्रसंगों में भी, संयोगवश, एक सहायता करने की संभावना होती है।

किन्तु ऐसी तीन बातें हैं जिनमें किसी भी हालत में न तो माँ अपने बच्चे को बचा सकती है, न बच्चा अपानी माँ को। ये तीन बातें हैं वृद्धावस्था का भय, बीमारी का भय और मृत्यु का भय।

जब माँ वृद्ध हो जाती है तब पुत्र उसका स्थान कैसे ले सकता है? जब पुत्र बीमार होता है तब माँ उसका स्थान कैसे ले सकती है? जब मृत्यु निकट आ पहुँचती है तब दोनों की सहायता केसे कर सकते हैं? भले ही दोनों एक दूसरे को कितना ही क्यों न चाहते हों या दोनों कितनी ही प्रीति क्यों न हो, ऐसे अवसरों पर कोई किसी की सहायता नहीं कर सकता।

4. इस संसार में पापकर्म करके, मृत्यु के बाद नरक में पड़े हुए एक पापी मनुष्य से यमराज ने पूछा, ''क्या मनुष्य लोक में रहते हुए तीन देवदूतों से तुम्हारी भेंट नहीं हुई'' ''नहीं महाराज, ऐसे किसी व्यक्ति से मेरी भेंट नहीं हुई।''

फिर यमराज ने उससे पूछा, ''क्या तुमने झुकी हुई कमरवाला और लाठी के सहारे चलनेवाला गलितगात्र बूढ़ा नहीं देखा?'' उस आदमी ने उत्तर दिया, ''जी हाँ, महाराज, ऐसे तो मैं कई बूढ़े आदमी देख चुका हूँ।'' तब यम ने उससे कहा, ''तुम ये नकरयातनाएँ इसलिए भोग रहे हो

कि तुने उस बूढ़े आदमी के रूप में भेजे गए देवदूत को नहीं पहचाना जो कि तुम्हें यह चेतावनी देने के लिए भेजा गया था कि तुम अति वृद्ध होने से पहले अपने जीवन को सुधारों।''

यम ने उससे फिर पूछा, ''क्या तुमने कभी रोग से पीड़ित अपने आप उठ-बैठ भी न सकनेवाले किसी ऐसे आदमी को हालत नहीं देखी जो सूखकर काँटा हो गया था?'' उसने उत्तर दिया, ''महाराज, ऐसे रोगी तो मैं कई देख चुका हूँ।'' तब यम ने उससे कहा, ''तुम्हें इस स्थान में इसलिए आना पड़ा कि तुम उन रोगी मनुष्यों में उन देवदूतों को नहीं पहचान पाए जो तुम्हें तुम्हारे अपने रोग के लिए आगाह करने के हेतु भेजे गए थे।''

तब यम ने उससे फिर एक बार पूछा, ''क्या तुमने कभी अपने आसपास किसी मरे हुए आदमी को नहीं देखा?'' मनुष्य ने उत्तर दिया, ''महाराज, मृत व्यक्ति तो मैं अब तक कई देख चुका हूँ।'' यम ने उससे कहा तुमने इन मृत व्यक्तियों में मृत्यु के संबंध में तुम्हें आगाह करने के लिए भेजे गए देवदूतों को नहीं पहचाना, इसलिए तुम्हें यहाँ लाया गया है। अगर तुम इन देवदूतों को पहचानते और उनकी चेतावनियों को समझ जाते, तो अपने जीवन में आमूल्य परिवर्तन करते और तुम्हें इस दु:खमय स्थान में आना नहीं पड़ता।''

5. कृशा गौतमी किसी धनवान श्रेष्ठी की पत्नी थी, जो अपने इकलौते पुत्र की मृत्यु के कारण पागल हो गई। उसने मृत बच्चे को गोद में उठा लिया ओर ''क्या ऐसा कोई नहीं है जो इस बच्चे को ठीक कर सके?'' पूछती हुइ दरदर भटकने लगी।

कोई भी उसके लिए कुछ नहीं कर पाया। किन्तु अन्त में बुद्ध के एक उपासक ने उसे भगवान के पास जाने की सलाह दी, जो उस समय जेतवन में विहार कर रहे थे। इसलिए वह मृत बच्चे को बुद्ध के पास ले गई।

भगवान ने सहानुभूति से उसकी ओर देखा और कहा, ''इस बच्चे को ठीक करने के लिए मुझे कुछ पीली सरसों के दानों की आवश्यकता होगी। जा और जिस घर में कोई मरा न हो ऐसे घर से पीली सरसों के चार-पाँच दाने ले आ।''

तब वह पगली ऐसा घर ढूँढ़ने चल दी जिसमें कोई न मरा हो; किन्तु व्यर्थ। अन्त में वह भगवान बुद्ध के पास लौटने के लिए बाध्य हो गई। उनके शांत-सौम्य सान्निध्य में, पहली बार उनके वचनों का अर्थ उसकी समझ में आया और उसे लगा कि जैसे वह स्वप्न से जाग उठी है। वह बच्चे के शव को ले गई, उसका दाहकर्म किया और फिर बुद्ध के पास लौटकर उनकी शिष्या बन गई।

4
भ्रान्ति का सवरूप

1. इस संसार में लोगों की प्रवृत्ति अधिकतर स्वार्थपरक और सहानुभूतिशून्य होती है; वे एक दसरे से प्रेम करना और एक दूसरे का आदर करना नहीं जानते। वे मामूली-सी बातों पर बहस करने लगते हैं और झगड़ पड़ते हैं, जिससे कि हानि तो उन्हीं को होती है और उन्हीं को कष्ट उठाने पड़ते हैं और जीवन दु:खों की एक नीरस शृंखला बन जाता है।

आदमी चाहे धनी हो या गरीब, उसे पैसे की चिंता रहती है, गरीब

गरीबी से कष्ट पाता है, धनी धन से। उनके जीवन लोभ के अधीन होते हैं इसलिए वे न कभी तृप्त होते है, न संतुष्ट।

धनी मनुष्य के पास संपत्ति हो तो उसकी चिंता लगी रहती है; उसे अपनी हवेली या दूसरी जायदाद की चिंता सताया करती है। वह चिंतित रहता है कि कहीं उस पर कोई आपत्ति न आन पड़े, उसकी हवेली जल न जाए, घर में चोर न घुस आएँ, उसका अपहरण न हो जाए। फिर उसे मृत्यु की और मृत्यु के बाद अपनी संपत्ति की व्यवस्था की चिंता होती है। निस्संदेह मृत्यु की यात्रा उसे अकेले करनी पड़ती है, मृत्यु में कोई उसका साथ नहीं देता।

गरीब आदमी हमेशा अपर्याप्तता या न्यूनता का शिकार बना रहता है और इसके कारण उसमें अनन्त लालसाएँ जागृत होती हैं-भूमि की और घर की। लोलुपता की ज्वाला में जलता हुआ वह अपने तन और मन को थका देता है और अधेड़ उम्र में ही मृत्यु का शिकार बनता है।

सारा संसार उसे शत्रु के समान दिखाई देता है और मृत्यु की राह भी उसे सुनसान लगती है, मानो उसे किसी लम्बी यात्रा पर जाना हो और साथ देनेवाले कोई मित्र पास न हों।

2. फिर, इस संसार में पाँच प्रकार के पाप हैं। पहला है निदर्यता; मानवमात्र से लेकर जमीन पर रेंगने वाले कीड़ों तक हर एक दूसरे से संषर्ष करने पर तुला हुआ है। बलवान दुर्बलों पर हमला करते हैं; दुर्बल बलवानों को धोखा देते हैं; सर्वत्र लड़ाई-झगड़े और निर्दयता का बोलबाला है।

दूसरा यह कि पिता और पुत्र, बड़े भाई और छोड़े भाई, पति और पत्नी, ज्येष्ठ रिश्तेदार और कनिष्ठ रिश्तेदार के बीच अधिकारों की स्पष्ट सीमारेखा नहीं हाती; हर अवसर पर प्रत्येक वरिष्ठ बनने की और दूसरे से लाभ उठाने की लालसा रखता है। वे एक दूसरे को ठगते हैं। उनमें छल भरा होता है और आस्था का अभाव होता है।

तीसरा, स्त्रियों और पुरुषों के बीच आचरण की कोई स्पष्ट सीमारेखा नहीं होती। हरएक के मन मं यदा-कदा अपवित्र और लम्पट विचार और वासनाएँ उठती हैं जो उनको निन्दनीय कर्म और अक्सर लड़ाई-झगड़े अन्याय तथा निर्दयता करने पर बाध्य करती है।

चौथा, लोगों में यह प्रवृत्ति होती है कि दूसरों के अधिकारों का अनादर करें, दूसरों को नीचा दिखाकर अपने महत्त्व को बढ़ा-चढ़ाकर कहें, आचरण के अवांछनीय उदाहरण पेश करें तथा अपनी अन्यायपूर्ण वाणी के कारण दूसरों को ठगें, उनकी झूठी निन्दा करें।

पाँचवाँ, लोगों में यह प्रवृत्ति दिखाई देती है कि दूसरों के प्रति अपने कर्त्तव्यों की उपेक्षा करें। वे अपनी सुख-सुविधाओं, अपनी लालसाओं का ही अधिक ख्याल करते हैं। वे दूसरों के उपकारों को भूल जाते हैं और दूसरों को इतना परेशान करते हैं कि उसकी परिणति अक्सर घोर अन्याय में हो जाती है।

3. लोगों को एक दूसरे के प्रति अधिक सहानुभूति शील होना चाहिए: उन्हें चाहिए कि वे सभी का उनकी विशिष्टताओं के लिए आदर करें

और संकटों में एक दूसरे की मदद करें। किन्तु इसके विपरीत वे स्वार्थी और कठोर हृदय होते है; थोड़ी-सी लाभ-हानि के लिए वे एक दूसरे से द्वेष करते हैं, परस्पर स्पर्धा करते हैं। स्पर्धा की भावना आरंभ में स्वल्प क्यों न हो, समय के साथ बढ़ती और तीव्र होती है और अनजान में गहरे द्वेष में बदल जाती है।

परस्पर घृणा की ये भावनाएँ शीघ्र हिंसक कर्मों में परिणत नहीं होतीं, फिर भी वे द्वेष और क्रोध की भावनाओं से जीवन को विषैला बना देती हैं, जो चित्त पर इतनी गहरी अंकित होती हैं कि लोग जन्म-जन्मान्तर तक उनके निशान वहन किए रहते हैं।

सचमुच, इस वासनामय संसार में मनुष्य अकेला पैदा होता है और अकेला मर जाता है। और मरणोत्तर जीवन में पापकर्मों का फल भोगने में कोई उसका साथ देनेवाला नहीं होता।

कार्य-कारण संबंध का नियम सार्वभौम है; हर मनुष्य को अपनी पापगठरी का वहन स्वयं करना पड़ता है और उसका फल भी खुद भुगतना पड़ता है। कार्य-कारण-संबंध का यह नियम पुण्यकर्मों पर भी लागू होता है। सहानुभूति और दयामय जीवन की परिणति सौभाग्य और सुख में होगी।

4. समय बीतने के साथ जब लोग देखते हैं कि कितनी दृढ़ता से वे लोभ, आदतों और कष्टों के पाश में बँधे हुए हैं, तब बहुत उदास और निराश हो जाते हैं। अक्सर अपनी निराशा में वे दूसरों से झगड़ पड़ते हैं और पाप में और गहरे पैठ जाते हैं; यहाँ तक कि सन्मार्ग पर चलने का प्रयास तक छोड़ देते हैं; और प्रायः अपनी इस निर्दयता के बीच ही

उनकी अकालमृत्यु हो जाती है और वे अनन्त काल तक दु:ख भोगते रहते हैं।

इस प्रकार अपने दुर्भाग्य और दु:खों के कारण हताश हो जाना बिलकुल अस्वाभाविक तथा सृष्टि के नियम के विपरित है, और इसीलि ऐसा मनुष्य इहलोक तथा परलोक दोनों में दु:ख भोगेगा।

यह सत्य है कि इस जीवन में सब कुछ अनित्य और अनिश्चितता से भरा हुआ है, किन्तु बड़े दु:ख की बात यह है कि मनुष्य इस तथ्य की उपेक्षा करता है और लगातार उपभोग आर अपनी वासनाओं की तृप्ति की खोज के प्रयत्न में लगा रहता है।

5. इस दु:खमय संसार में लोगों के लिए यह स्वाभाविक है कि वे स्वार्थी और अहंकेन्द्रित विचार ओर व्यवहार करें और उसके कारण यह भी उतना ही स्वाभाविक है कि इसके परिणामस्वरूप क्लेश और दु:खों की उत्पत्ति हो।

लोग अपना ही खयाल रखते और दूसरों की उपेक्षा करते हैं। लोग अपनी इच्छाओं को लोभ, वासना और सभी प्रकार के पापकर्मों की ओर दौड़ने देते हैं। इसके लिए उन्हें अनन्तकाल तक दु:ख भोगना होगा।

भोग-विलास का समय दीर्घ काल तक नहीं टिकता, शीघ्र ही बीत जाता है; इस संसार में केसी भी चीज का उपभोग सदा के लिए नहीं किया जा सकता।

6. अत: लोगों को चाहिए कि जब तब वे तरुण और स्वस्थ हैं, सांसारिक कर्मों के प्रति अपने लोभ और आसक्ति का त्याग करें तथा मन लगाकर

सच्चे निर्वाण की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करें, क्योंकि निर्वाण के अतिरिक्त और कहीं भी शाश्वत निर्भरता और सुख नहीं है।

किन्तु अधिकतर लोग कार्य-कारण-संबंधी नियम में विश्वास नहीं करते या उसकी उपेक्षा करते हैं। यह भुलाकर कि पुण्यकर्मों से सुख की प्राप्ति होती है और पापकर्मों से दुर्भाग्य की, वे अपने लोभ और स्वार्थ की आदतों में फँस जाते हैं। वे यह भी विश्वास नहीं करते कि अपने इस जन्म के कर्मों का प्रभाव अगले जन्मों पर पड़ता है बल्कि अपने पापकर्मों के फलों के लिए दूसरों को उत्तरदायी सकझते हैं।

वर्तमान कर्मों के अगले जन्मों पर पड़ने वाले प्रभाव तथा वर्तमान कष्टों के पिछले जन्मों के साथ संबंध के बारे में ठीक ज्ञान न रखने के कारण वे अपने दु:खों क लिए शोक और विलाप करते रहते हैं। वे केवल अपनी वर्तमान लालसाओं और वर्तमान दु:खों का ही विचार करते हैं।

इस संसार में शाश्वत और नित्य कुछ भी नहीं है। सब कुछ अनित्य, परिवर्तनशीलन, क्षणभंगुर और अनिश्चित हैं। किन्तु लोग अज्ञानी और स्वार्थी होत हैं और केवल क्षणिक लालसाओं और प्राप्य दु:खों की ही चिंता करते हैं। वे सच्चे उपदेशों को न तो सुनते हैं न समझने का प्रयत्न करते है; अपने आपको केवली वर्तमान हितों में, संपत्ति और लालसा में खो देते हैं।

7. सनातन काल से असंख्य लोग इस भ्रांतिमय संसार में पैदा होते आ रहे हैं और कष्ट भोग रहे है और आज भी पैदा हो रहे हैं। किन्तु यह सौभाग्य

की बात हैं कि संसार में भगवान बुद्ध के उपदेश विद्यमान हैं और मनुष्य उनमें विश्वासकर अपना उद्धार कर सकते हैं।

अतः, लोगों को चाहिए कि गहरा चिंतन करें, अपने मन को पवित्र रखें और शरीर को स्वस्थ रखें, लोभ और पाप से दूर रहें और कल्याण की साधना करें।

हमें, सौभाग्य से, भगवान बुद्ध के उपदेशों का लाभ हुआ है; हमें उनमें श्रद्धा रखनी चाहिए और बुद्ध-क्षेत्र में पैदा होने की कामना करनी चाहिए। बुद्ध के उपदेशों को जान लेने के बाद, हमें दूसरों का अनुसरण करके लोभ और पाप के मार्गों पर नहीं चलना चाहिए। साथ ही हमें बुद्ध के उपदेशों को केवल अपने तक ही नहीं रखना चाहिए, अपितु उन उपदेशों के अनुसार आचरण करना और उन्हें दूसरों तक पहुँचाना चाहिए।

पंचम अध्याय

बुद्ध की दी हुई मुक्ति

1
अमिताभ बुद्ध के प्रणिधान (संकल्प)

1. जैसा कि पहले समझाया जा चुका है, लोग सदा सांसारिक वासनाओं के वश होकर एक के बाद एक पापकर्म करते चले जाते हैं और अवांछनीय कर्मों का भार ढोते रहते हैं। उनके लिए यह संभव नही होता कि वे निजी ज्ञान यानिजी शक्ति से लोभ और भोगलालसा के बंधनों को तोड़े। जब उनके लिए सांसारिक वासनाओं पर विजय पाना या उन्हें नष्ट करना संभव नहीं, तब वे बुद्धत्व के सत्य स्वभाव का साक्षात्कार भला केसे कर सकते हैं?

मनुष्य-स्वभाव के पूर्ण ज्ञाता बुद्ध के मन में मनुष्यों के प्रति अपार करुण थी और उन्होनें प्रतिज्ञा की थी कि भले ही कितने भी कष्ट क्यों न उठाने पड़ें, मनुष्यों को भय और दु:खों से मुक्त करने के लिए वे यथासंभव सब कुछ करेंगे। इस मुक्ति को कार्यान्वित करने के लिए, बहुत पुरातन काल में वे बोधिसत्त्व के रूप में प्रकट हुए और उन्होंने ये दस प्रणिधान किए थे :

(क) मैं स्वयं बुद्धत्वप्राप्ति कर लूँ फिर भी जब तक मेरे बुद्धक्षेत्र में पैदा हुए सभी तत्त्वों का बुद्धत्व में प्रवेश करना और निर्वाण प्राप्त करना निश्चित नहीं हो जाता, स्वयं अनुत्तरसम्यक्संबोधि प्राप्त नहीं करूँगा

(ख) में स्वयं बुद्धत्व प्राप्त कर लूँ फिर भी मेरी प्रभा प्रामाणिकी (मर्यादित) होकर विश्व के कोने-कोने को प्रकाशित न कर दे तब तक स्वयं अनुत्तरसम्यक्संबोधि प्राप्त नहीं करूँगा।

(ग) मैं स्वयं बुद्धत्व प्राप्त कर लूँ फिर भी यदि मुझे कुछ सीमित समय तक ही जीना पड़े, चाहे वह सीमा कई हजारों अथवा लाखों वर्षों की क्यों न हो तब तक मैं अनुत्तरसम्यक्संबोधि प्राप्त नहीं करूँगा।

(घ) मैं स्वयं बुद्धत्व प्राप्त कर लूँ फिर भी दसों दिशाओं के सभी बुद्ध मेरी प्रशंसा नहीं करते, मेरे नाम का संकीर्तन नहीं करते तब तक स्वयं अनुत्तरसम्यक्संबोधि प्राप्त नहीं करूँगा।

(ङ) मैं स्वयं बुद्धत्व प्राप्त कर लूँ फिर भी दसों दिशाओं के सभी सत्त्व सच्ची श्रद्धापूर्वक दस बार मेरे नाम का जापकर सच्ची श्रद्धा के साथ मेरे बुद्धक्षेत्र में पैदा होने का प्रयास करके भी पैदा होने में सफल नहीं होते, तब तक स्वयं अनुत्तरसम्यक्सोधि प्राप्त नहीं करूँगा।

(च) मैं स्वयं बुद्धत्व प्राप्त कर लूँ फिर भी दसों दिशाओं के सभी सत्त्व चित्त में अनुत्तरसम्यक्संबोधि की कामना करते हुए, बहुत पुण्य की प्राप्ति कर सच्चे दिल के साथ मेरे बुद्धक्षेत्र में पैदा होने की इच्छा रखते हुए भी, यदि उनका मरणकाल उपस्थित हो जाए और मैं उस समय महान् बोधिसत्त्वों से परिवृत उस व्यक्ति के सामने खड़ा न होने पाऊँ, तब तक स्वयं अनुत्तरसम्यक्संबोधि प्राप्त नहीं करूँगा।

(छ) मैं स्वयं बुद्धत्व प्राप्त कर लूँ फिर भी दशों दिशाओं के सत्त्व मेरा नाम सुनकर मेरे बुद्धक्षेत्र में चित्त को प्रेरितकर, उसके लिए असंख्य

कुशल मूलों का अवरोपणकर, दिल लगाकर दान-पुण्यकर मेरे बुद्धक्षेत्र में पैदा होने की कामना रखें और फिर भी इच्छा के अनुसार उसमें पैदा न होने पाएँ, तब तक स्वयं अनुत्तरसम्यक्संबोधि प्राप्त नहीं करूंगा

(ज) मैं स्वयं बुद्धत्व प्राप्त कर लूँ, फिर भी जब तक मेरे बुद्ध क्षेत्र में पैदा हुए सत्व 'एक-जाति-प्रतिबद्ध' यानी अगले जन्म में बुद्ध बनने की योग्यता रखने वाले' न हों, तब तक स्वयं अनुत्तरसम्यक्संबोधि प्राप्त नहीं करूँगा। इस प्रतिज्ञा में वो सत्व नहीं है जो, अपने निजि प्रणानुसार, मनुष्यों के हित हेतु अपने महाप्रण का कवच पहनते हुए, संसार के कल्याण और शान्ति हेतु असंख्य लोगों को निर्वाण प्राप्त कराकर, महाकरुणा का पुण्य प्राप्त करते हैं।

(झ) मैं स्वयं बुद्धत्व प्राप्त कर लूँ फिर भी संसार के सभी लोग तन-मन को पवित्रकर उन्हें सांसारिक बातों से ऊपर उठानेवाली मेरी प्रेमभरी करुणा की भावना से प्रभावित नहीं होते, तब तक स्वयं अनुत्तर सम्यक्संबोधि प्राप्त नहीं करूँगा।

(ञ) मैं स्वयं बुद्धत्व प्राप्त कर लूँ फिर भी दशों दिशाओं के सभी बुद्धक्षेत्र के सत्त्व, मेरा नाम सुनकर, जन्म और मृत्यु के संबंध में सही धारणाएँ नहीं सीखते और सांसारिक ताप, क्लेश और दुःखों के बीच मन को शान्त और पवित्र बनाए रखनेवाला पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं कर लेते तब तक स्वयं अनुत्तरसम्यक्संबोधि प्राप्त नहीं करूँगा।

''इस प्रकार मैं प्रतिज्ञाएँ करता हूँ और जब तक वे पूरी नहीं होतीं मैं अनुत्तरसम्यक्संबोधि प्राप्त नहीं करूँगा। मैं अपकिरमित प्रभा का स्वामी बनकर सभी देश को प्रकाशित कर संसार के कष्टों को दूर करूँगा और लोगों के लिए उपदेशों के भंडार खुलवाकर, व्यापक रूप से पुण्य के रत्नों का दान करूँगा।''

2. इस प्रकार, अनेक कल्पों तक असंख्य पुण्यों का संचय कर आमिदा अर्थात् अमिताभ या अमितायु बुद्ध बने और अपने बुद्धक्षेत्र को पवित्रता

से परिपूर्ण किया, जिससे स्वर्गीय वातावरण में रहते हुए वे लोगों को उपदेश देकर उनका उद्धार कर रहे हैं।

यह सुखावती लोकधातु, जहाँ किसी प्रकार का दुःख नहीं, सचमुच, अत्यधिक सुख ओर शांति से परिपूर्ण है। वहाँ के रहनेवाले, जब-जब इच्छा करते हैं, उनके सामने वस्त्र, अन्न और सभी प्रकार की सुंदर वस्तुएँ प्रकट हो जाती हैं। जब-जब वहाँ के पारिजात वृक्षों को टहनियों में पवन अठखेलियाँ करता है तो ज्ञानगर्भित दिव्यवाणी दसों दिशाओं में व्याप्त हो जाती है, जिससे सुननेवालों के चित्त का मैल धुल जाता है।

इस सुखावती लोकधातु में तरह-तरह के सुगंधित कमल पुष्प खिलते हैं, जिनकी अति सुन्दर कोमल पँखुड़ियाँ अनिर्वचनीय दिव्य आभा से द्युतिमान होती रहती है! कमल पुष्पों की यह दिव्य आया ज्ञान के पथ को प्रकाशित करती और इस पवित्र उपवेश का श्रवण करनेवालों को परम शांति प्रदान करती है।

3. दसों दिशाओं के सभी बुद्ध इस अमिताभ अथवा अमितायु बुद्ध का गुणगान किया करते हैं।

जो भी मनुष्य इस बुद्ध के नाम का श्रवण करेगा, उसमें गहरी आस्था रखेगा, आनन्दित होगा, वह उस बुद्ध के क्षेत्र में जन्म ले सकेगा।

जो उस सुखावती में जन्म लेते हैं, उन्हें अमितायु बुद्ध के समान अनन्त आयु प्राप्त होती है और वे भी दूसरे सत्त्वों के उद्धार का प्रणिधान लेकर, उस प्रणिधान के अनुसार कार्य करने में लग जाते हैं।

अपने इस प्रणिधान के कारण वे सभी आसक्तियों का त्याग करते हैं और इस संसार की अनिन्तया का साक्षात्कार करते हैं। वे सभी जीवों के उद्धार के लिए अपनु पुण्यों की पूँजी लगा देते हैं; वे दूसरे सभी जीवों की भ्रांतियों और दु:खों में सहभागी होते हुए उनके और अपने जीवन को एकाकार कर देते हैं; किन्तु साथ ही सांसारिक जीवन के बंधनों और आसक्तियों से स्वयं मुक्त हो जाते हैं।

सांसारिक जीवन की बाधाओं और कठिनाइयों से वे भली भांति परिचित होते हैं, किन्तु साथ ही उन्हें बद्ध की करुणा की असीम संभावनाओं का भी ज्ञान होता है। वे स्वेच्छा से आ-जा सकते हैं, वे स्वेच्छा से आगे बढ़ या रुक सकते हैं, फिर भी वे उन लोगों के साथ रहना पसन्द करते हैं, जिनपर बुद्ध की करुणा होती है।

अत: जो भी इस अमिताभ बुद्ध का नाम सुनकर परम श्रद्धा से एक बार भी उसका जप करेगा वह बुद्ध की करुणा का भागी हो सकेगा। अत: सब लोगों को चाहिए कि वे बुद्ध के उपदेश का श्रवण और अनुसरण करें, चाहे वह उन्हें फिर से जन्म-मृत्यु के संसार को व्याप्त करनेवाली ज्वालाओं में से ले जानेवाला ही क्यों न प्रतीत हो।

अनुत्तरसम्यक्संबोधि की वास्तव में कामना करनेवालों को बुद्ध की शक्ति पर भरोसा करना होगा। सामान्य मनुष्य के लिए बुद्ध के आधार के बिना अनुत्तरसम्यक् संबोधि प्राप्त करना सर्वथा असंभव है।

4. अमिताभ बुद्ध यहाँ से कहीं दूर नहीं हैं। कहा जाता है कि उनकी सुखावती लोकधातु कहीं दूर पश्चिम दिशा में है; किन्तु वह तो उन लोगों के हृदय में भी है, जो दिल से उनके साथ रहने की इच्छा रखते हैं।

जब कुछ लोग अपने चित्त में अमिताभ बुद्ध की सुवर्ण आभा में दमकती आकृति चित्रित करते हैं, तो चित्र चौरासी हजार आकृतियों अथवा विशषताओं में प्रकीर्ण हो जाता है। हर आकृति या विशेषता चौरासी हजार किरणें प्रकाशित करती है और हर किरण विश्व को प्रकाशित करती हुई, बुद्ध के नाम का जप करनेवाले किसी भी व्यक्ति को अँधेरे में नहीं रहने देती। इस प्रकार बुद्ध लोगों के लिए बुद्धत्व मुक्ति का लाभ उठाने में सहायक होते हैं।

बुद्ध की मूर्ति का दर्शन मनुष्य को बुद्ध के हृदय का दर्शन कराने में सहायक होता है। बुद्ध का हृदय महाकरुणा से भरा हुआ है, जिसमें सभी लोग समाये रहते हैं, वे भी जो उनकी करुणा को नहीं जानते या भूल गए है; फिर जो उनका श्रद्धापूर्वक स्मरण करते हैं उनका तो कहना ही क्या!

श्रद्धा रखनेवालों को वे अपने साथ एक रूप हो जाने का अवसर प्रदान

करते हैं। क्योंकि बुद्ध की काया सबके लिए समान रूप से सर्वसमावेशी है; जो भी उनका स्मरण करता है, बुद्ध भी उसका स्मरण करते हुए उसके मन में प्रवेश करते हैं।

इसका अर्थ यह हुआ कि जब हृदय बुद्ध का ध्यान करता है, तब वह हृदय वास्तव में परिपूर्ण आकृति या विशेषता से युक्त बुद्ध ही है। यह हृदय स्वयं बुद्ध बन जाता है; यह हृदय स्वयं बुद्ध ही है।

अत: निर्मल और सच्ची श्रद्धा रखनेवाले मनुष्य को अपने हृदय की कल्पना बुद्ध के हृदय के रूप में करनी चाहिए।

5. बुद्ध का शरीर विभिन्न रूप धारण करने में सक्षम है और हर मनुष्य की क्षमता के अनुरूप विविध रूपों में प्रकट हो सकता है।

वे अपने शरीर को विराट रूप में प्रकट कर सारे आकाश और अनन्त नक्षत्रलोक के अवकाश को व्याप्त करते हैं। वे अपने को सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप में भी प्रकट करते हैं कभी आकारों में, कभी शक्ति में, कभी मन में पहलुओं में तो कभी व्यक्तित्व में।

फिर भी किसी न किसी रूप में उन लोगों के सामने अवश्य प्रकट होते हैं, जो श्रद्धा से उनके नाम का जप करते हैं। ऐसे लोगों के सामने वे सदा दो बोधिसत्त्वों के साथ प्रकट होते हैं–करुणा के बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर और ज्ञान के बोधिसत्त्व महास्थामप्राप्त। उनका यह

प्रकटीकरण विश्वव्यापी होने के कारण यद्यपि कोई भी देख सकता है, किन्तु वास्तव में श्रद्धावान् लोग ही उन्हें देख पाते हैं।

जो उनका आधिभौतिक रूप देख पाते हैं वे अपरिमित संतोष और सुख पाते हैं। और जो सच्चे बुद्ध को देख पाते हैं उसको तो अगणित आनंद और अखण्ड शांति का लाभ होता है।

6. अमिताभ बुद्ध का हृदय साक्षात् महान करुणा तथा प्रज्ञा ही है इसलिए वे किसी भी मनुष्य का उद्धार कर सकते हैं।

सबसे दुष्ट लोग–जो अविश्वसनीय अपराध करते हैं, जिनके मन में लोभ, क्रोध और मूढ़ता भरी होती है; जो झूठ बोलते हैं, बकवास करते हैं, गालियाँ देते हैं और ठकते है; जो हत्या करते हैं, चोरी और व्यभिचार करते हैं; वर्षों के दुष्कर्मो के बाद जो अपने जीवन की अंतिम घड़ी में पहुँच गए हैं–उन्हें निश्चित ही अनंतकाल तक कष्ट भुगतने पड़ेंगे।

एक भला मित्र उनके पास आ जाता है और उनकी अंतिम घड़ी में उन्हें समझाता है, ''भाइयों तुम लोग अब मृत्यु के सम्मुख हो; अब तुम अपेन जीवन से दुष्कर्मो को मिटा नहीं सकोगे, किन्तु तुम अमिताभ बुद्ध के नाम का जाप करके उसकी करुणा की शरण में जा सकते हो।''

यदि ऐसे दुष्ट लोग एकाग्र चित्त से अमिताभ बुद्ध के पवित्र नाम का

जाप करें तो उनके सब पाप, जो उन्हें निश्चित रूप से भ्रांतिपूर्ण संसार के मोह जाल में भरमाये रहते हैं, नष्ट हो जाएँगे।

यदि केवल पावन नाम का जाप ही ऐसा चमत्कार कर सकता है तो अगर हम अपना हृदय इस बुद्ध पर केन्द्रित कर सकें तो कहना ही क्या!

इस प्रकार पावन नाम का जाप करनेवालों की जब अन्तिम घड़ी आ जाएगी, तब अमिताभ बुद्ध बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर ओर बोधिसत्त्व महास्थामप्राप्त के साथ उनके सामने प्रकट होंगे ओर वे सुखावती लोक धातु को ले जाए जाएँगे, जहाँ वे पुण्डरीक की पूर्ण पवित्रता के साथ जन्म लेंगे।

अत: हर एक को यह प्रार्थना ध्यान में रखनी चाहिए: 'नमु आमिदा बुत्सु!' (नमो अमिताभबुद्धाय!) अर्थात मैं अतिम प्रकाश और अतिम आयुवाले बुद्ध की शरण जाता हूँ।

2
अमिताभ बुद्ध की पवित्र भूमि-सुखावती

1. अमिताभ बुद्ध अमितायु बुद्ध चिरंजीव हैं और वर्तमान में भी धर्मोपदेश कर रहे हैं। उनकी सुखावती लोकधातु में न किसी प्रकार का दु:ख है, न अंध:कार और वहाँ हर दिन आनंद में बीतता है। इसलिए उसे स्वर्गभूमि कहते हैं।

इस सुखावती लोकधातु में अनेक सप्तरत्नमयी पुष्करिणियाँ हैं, जो निर्मल जल से परिपूर्ण हैं, जिनके तल में सुवर्णबालुका बिछी हुई है और

जिन में रथचक्र जितने बड़े विभिन्न रंगों के कमल खिले हुए हैं। नीलवर्ण के फूलों पर नीली, पीतवर्ण के फूलों पर पीली, लोहितवर्ण के फूलों पर लाल तथा श्वेतवर्णों के फूलों पर शुभ्र आभा विकसित है और उनकी दिव्य सुगन्ध से सारा वातावरण गमक रहा है।

उन पुष्करिणियों के चतुर्दिक सुवर्ण, रौप्य, वैदूर्य तथा सूर्यकान्त मणियों से बने मंडप हैं, जहाँ से पुष्करिणियों के तट तक स्फटिक सोपान बने हुए हैं। कहीं-कहीं वेदिकाएँ बनी हुई हैं जो रत्नखचित परदों और जालियों से परिवृत हैं। बीच-बीच में सुगंधित वृक्षों के झुरमुट और खिले हुए फूलों से सुशोभित पौधे लगे हुए हैं।

वहाँ आकाश मं दिव्य संगीत गूँजता है और पृथ्वी पर सुवर्ण वर्ण की आभा फैली रहती है। रात को तीन बार और दिन में तीन बार दिव्य मान्दारपुष्पों की वर्षा होती है। उस बुद्धक्षेत्र के लोग उन फूलों को एकत्रितकर टोकरी में रखकर अन्य लोक धातुओं को जाते और वहाँ के असंख्य बुद्धों को समर्पित करते हैं।

2. फिर इस बुद्धक्षेत्र के उद्यानों में हंस, मयूर, शुक, सारिका, कलविक आदि असंख्य पक्षी कलकूजित स्वर से बुद्ध के पुण्यों और गुणों की प्रशंसा करते हुए उनके उपदेशों का प्रचार करते हैं।?

जो भी इन पक्षियों का कलकूजन सुनता है उसे बुद्ध का स्मरण हो

आता है, धर्म का स्मरण हो आता है और संघ का स्मरण हो आता है। जो भी इन पक्षियों का कलकूजन सुनता है उसे लगता है कि वह बुद्ध की वाणी ही सुन रहा है और वह नए सिरे से बुद्ध के प्रति अपनी श्रद्धा दृढ़ करता है, उपदेश सुनने के आनन्द का अनुभव करता है, शान्ति-लाभ करता है, और सभी बुद्धक्षेत्रों के बुद्धों के उपदेशों को ग्रहण करनेवाले सत्त्वों के साथ भ्रातृत्व दृढ़ करता है।

मन्द पवन पारिजातवृक्षों की पंक्तियों में से गुजरता है और रत्न खचित परदों को हिलाता है, तब उससे ऐसी मधुर ध्वनि निकलती है, मानो अनेकविध वाद्यों का संगीत प्रतिध्वनित हो रहा हो।

इस संगीत लहरी को सुनने वाला, फिर स्वाभाविक रूप से बुद्ध का स्मरण करता है, धर्म का स्मरण करने लगता है और संघ का स्मरण करने लगता है। वह बुद्धक्षेत्र इस प्रकार के गुणव्यूहों से समलंकृत हैं।

3. किस कारण से उस बुद्धक्षेत्र के बुद्ध को अमिताभ अथवा अमितायु कहते हैं? इसलिए कि इन बुद्ध की प्रभा अपरिमित होकर, दशों दिशाओं के बुद्धक्षेत्रों को प्रकाशित करके जरा भी नहीं घटती। फिर उनकी आयु भी अपरिमित होने के कारण उन्हें अमितायु कहा जाता है।

फिर दूसरा कारण यह है कि उस बुद्धक्षेत्र में पैदा होने वाले सभी सत्त्व अविवर्तनीय-अर्थात् दुबारा भ्रांति के संसार में न लौटनेवाले होते हैं और उनकी संख्या अप्रमेय होती है।

और एक कारण यह भी है कि इन बुद्ध की प्रभा से नए जीवन का साक्षात्कार करनेवालों की संख्या भो अप्रमेय है।

अतः जो भी इन बुद्ध का नाम एकाग्र चित्त से, अविपक्षिप्त चित्त होकर एक दिन अथवा सात दिन तक हृदय में धारण करे तो उस मनुष्य की अंतिम घड़ी में ये बुद्ध बोधिसत्त्वों और श्रावकसंघ के साथ उसके सामने प्रकट होंगे। वह मनुष्य शांत चित्त से प्राण छोड़ेगा और तुरन्त उन बुद्ध की सुखावती लोकधातु में पैदा होगा।

यदि कोई मनुष्य अमिताभ बुद्ध का नाम सुनकर उनके उपदेशों में विश्वास करे, तो वह बुद्धपरिगृहित (सब बुद्धो से रक्षित) बनकर अनुत्तर सम्यक्संबोधि प्राप्त करेगा।